चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

1986 से प्रकाशित | 20 फरवरी– 26 फरवरी 2017 | नई दिल्ली | हर शुक्रवार को प्रकाशित | Postal Regn. No. DL (ND)-11/6139/2015-17, RNI No. DELHIN/2009/30467

बनते-बिगड़ते समीकरणों में बनते-बिगड़ते चेहरे

मुख्यमंत्री कौन?

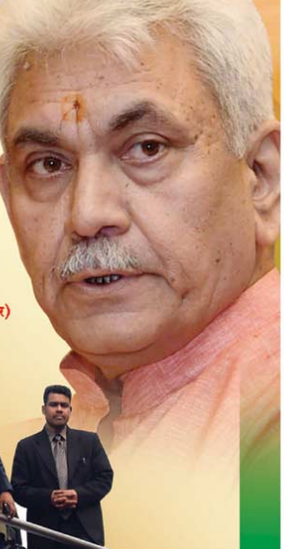

प्रभात रंजन दीन

चुनाव गहराता जा रहा है और यह प्रश्न छाता जा रहा है कि उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री कौन बनेगा. इसी सवाल में यह जिज्ञासा भी निहित है कि किस पार्टी की सरकार बनेगी या कौन-कौन पार्टियां मिल कर सरकार बनाएंगी और ऐसे में सर्व-दलीय मुख्यमंत्री का सर्व-स्वीकार्य चेहरा किसका होगा? अलग-अलग पार्टियों के नजरिए से देखें तो मुख्यमंत्री के लिए समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी का निर्णय तय है. कांग्रेस का भी तय है कि उसका कुछ भी तय नहीं है. सर्वाधिक संशय, अनिश्चय या मौकापरस्त-मौन की स्थिति भाजपा की है. मार्च में चुनाव परिणाम आने के बाद तो यह तय हो ही जाएगा कि किस पार्टी की सरकार बनेगी और मुख्यमंत्री कौन होगा. लेकिन परिणाम आने के पहले की जिज्ञासा अधिक रोचक और रोमांचक होती है. मुख्यमंत्रियों के निर्धारित और संभावित चेहरों पर हम बाद में बात करेंगे. पहले भविष्य के बनने बिगड़ने वाले समीकरणों की लीक से हट कर समीक्षा करते चलें.

अगर हम यह आकलन करें कि चुनाव परिणाम के बाद सीटों की स्थिति देख कर राहुल गांधी बसपा के साथ सरकार बनाने के लिए हामी भर दें, तो यह कोई हवा में पतंग उड़ाने जैसा आकलन नहीं है. समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन करने के बाद पहली बार साझा प्रेस कॉन्फ्रेंस में जब राहुल खुले तौर पर मायावती के प्रति अपना सम्मान और समर्थन जता सकते हैं तो चुनाव बाद क्यों नहीं! यह सवाल खुद कांग्रेसी ही उठाते हैं. इधर एक लंबे अर्से से मायावती और कांग्रेस के बीच अच्छे सम्बन्ध सुगबुगाते रहे हैं. मायावती ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उत्तराखंड के राज्यसभा चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशियों को चुनाव जितवाकर इसका स्पष्ट संदेश भी दिया. चुनाव के पहले कांग्रेस ने गठबंधन के लिए बसपा को अधिक प्राथमिकता दी थी, लेकिन मायावती को कम सीटों पर चुनाव लड़ना मंजूर नहीं था. इस मामले में वे अखिलेश से अधिक आत्मविश्वास से भरी दिखीं. बसपा से बात नहीं बनने के बाद ही कांग्रेस ने समाजवादी पार्टी का हाथ थामा. अब यह साथ किस दूरी तक पसंद आएगा, यह कहना अत्यंत मुश्किल है. मायावती भाजपा पर जिस कदर तल्ख दिखती हैं, उतनी हमलावर वे कांग्रेस पर तो कतई नहीं दिखतीं. ऐसा ही कांग्रेस के साथ भी है. कांग्रेस भी मायावती के खिलाफ कटु नहीं है, भले ही वह अभी सपा के साथ खड़ी हो, लेकिन वह सपा के साथ खड़े होकर भी मायावती के खिलाफ निंदा-रस के सियासी आस्वादन से खुद को बचा रही है.

समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन करने के बाद पहली बार साझा प्रेस कॉन्फ्रेंस में जब राहुल खुले तौर पर मायावती के प्रति अपना सम्मान और समर्थन जता सकते हैं तो चुनाव बाद क्यों नहीं! यह सवाल खुद कांग्रेसी ही उठाते हैं. इधर एक लंबे अर्से से मायावती और कांग्रेस के बीच अच्छे सम्बन्ध सुगबुगाते रहे हैं. मायावती ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उत्तराखंड के राज्यसभा चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशियों को चुनाव जितवाकर इसका स्पष्ट संदेश भी दिया.

मायावती के कारण उत्तराखंड में कांग्रेस की सरकार बची रही और मायावती की मदद से ही मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में कांग्रेस के राज्यसभा सदस्य चुने गए. इसमें कांग्रेस के राज्यसभा सदस्य कपिल सिब्बल भी मायावती से उपकृत होने वाले नेताओं में शामिल हैं. मायावती के इस एहसान को कांग्रेस भूल नहीं सकती. उसे भूलना भी नहीं चाहिए. राहुल ने अखिलेश के समक्ष मायावती की प्रशंसा कर ऐसा ही जताया. लिहाजा, राजनीतिक समीक्षा का एक मजबूत पहलू यह है कि भले ही विधानसभा चुनाव के पहले बसपा के साथ कांग्रेस का गठबंधन नहीं हो पाया, लेकिन चुनाव परिणाम के बाद के नए सियासी समीकरण बुनने का काम अंदर-अंदर चल रहा है. कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता ने कहा कि कांग्रेस को अगर अखिलेश यादव मुख्यमंत्री के बतौर स्वीकार्य हो सकते हैं तो मायावती क्यों नहीं? उन्होंने यह भी कहा कि गठबंधन के बाद सपा प्रमुख अखिलेश यादव की चुनावी सभाओं में उपस्थित रहने के लिए कांग्रेस के सम्बद्ध क्षेत्रीय नेताओं को 'पास' दिया जाता है, लेकिन कांग्रेस के नेता सपा की चुनावी सभाओं में शरीक रहने से बिल्कुल परहेज कर रहे हैं. इस पर उनके खिलाफ पार्टी कोई रंज भी नहीं दिखा रही. आप गौर करें तो अखिलेश की सभाओं में कांग्रेस के नेता दिखाई नहीं देते, भले ही उनके क्षेत्र की सीट गठबंधन के कारण सपा के खाते में चली गई हो. जबकि गठबंधन का करार यही है कि दोनों दल एक-दूसरे के क्षेत्र में एक-दूसरे प्रत्याशियों को जितवाएं, लेकिन ऐसी कोई साझा कवायद जमीनी स्तर पर कहीं नहीं दिख रही. लिहाजा, इस संभावना पर अधिक आश्चर्य न करें कि कांग्रेस और बसपा में चुनाव बाद का गठबंधन हो जाए और सरकार बनाने में कांग्रेस बसपा की मदद कर दे.

राजनीतिक समीक्षकों से लेकर आम नागरिक तक इस बात का अनुमान करते हैं कि बसपा भाजपा के साथ मिल कर सरकार बना सकती है. इस अनुमान के पीछे बसपा की ऐसी पृष्ठभूमि है. मुस्लिम समुदाय के एक बुद्धिजीवी ने बेसाख्ता कहा, 'इससे मुसलमानों पर क्या फर्क पड़ता है कि मायावती भाजपा के साथ मिल कर फिर से सरकार बना लें!' उनका तर्क यह था कि भाजपा का साथ लेकर

(शेष पृष्ठ 2 पर)

मुख्यमंत्री कौन?

पृष्ठ 1 का शेष

सरकार बनाने के बावजूद मायावती न्यूनतम साझा कार्यक्रम की शर्त के आधार पर मुसलमानों का हित भी देखेंगी, क्योंकि उन्होंने सबसे अधिक मुसलमानों को अपना प्रत्याशी बनाया है. लेकिन यह भी सच है कि मुसलमानों ने भाजपा की संभावनाएं रोकने के लिए ही मायावती को समर्थन देने का मन बनाया है, लिहाजा अब भाजपा के साथ जाने में मायावती को कुछ व्यवहारिक मुश्किलें आ सकती हैं. पर एक और स्थिति के बारे में आप कल्पना करें कि चुनाव बाद क्या भाजपा अखिलेश का साथ देकर सपा नेतृत्व की सरकार बनवा सकती है? सियासत में कुछ भी संभव है, यह कहना बहुत आसान है, लेकिन बिहार में महागठबंधन से अलग होने से लेकर सपा के पारिवारिक कलह के नेपथ्य में जो शक्तियां सक्रिय दिखती रही हैं, वह अब निष्क्रिय थोड़े ही हो गई हैं. महागठबंधन से सपा को अलग कराने वाले प्रो. रामगोपाल यादव सपा के खास अलमबरदार अब भी हैं. सपा परिवार के जो सदस्य भाजपा के नितांत विरोधी और समाजवादी-जनतावादी गठबंधन के प्रबल समर्थक थे, वे सब अब पार्टी से बाहर हैं. मुलायम को अखिलेश ने अप्रासंगिक बना ही दिया है. ऐसे में चुनाव बाद भाजपा के साथ सपा की सत्ताई-समझदारी तो बन ही सकती है. जब समाजवादी पार्टी का पारिवारिक कलह परवान पर था और यह स्थिति बन गई थी कि अखिलेश और रामगोपाल पार्टी से बेदखल कर दिए जाएंगे, तब अखिलेश द्वारा एक नई पार्टी बना कर भाजपा के साथ गठबंधन में जाने की पहल और चर्चाएं दोनों शुरू हो गई थीं. रामगोपाल अर्सा पहले से चुनाव आयोग के दफ्तर जाने-आने लगे थे और भाजपा नेताओं, खास कर भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह से उनकी मुलाकातें कोई छुपी हुई बात नहीं रह गई थी.

अखिलेश गठबंधन का निर्द्वंद्व चेहरा

खैर, समाजवादी पार्टी के मुख्यमंत्री-मुख को लेकर कोई भ्रम या प्रतिद्वंद्विता नहीं है. इसी तरह बहुजन समाज पार्टी में मुख्यमंत्री का चेहरा मायावती के अलावा कोई दूसरा होगा, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता. यानि, अखिलेश और मायावती का चेहरा अपनी-अपनी पार्टी के दृष्टिकोण से निर्द्वंद्व है. कांग्रेस का कोई चेहरा नहीं है. एक चेहरा था, तो उसे भी मैदान छोड़ कर पीछे हटना पड़ा. अब कांग्रेस कलेजे पर अखिलेश और पीठ पर मायावती का चेहरा लिए फिर रही है. भाजपा के मुख्यमंत्री-फेस से कई समानान्तरी व्यक्तित्व जुड़े हैं, जिन पर हम चर्चा बस थोड़ी देर में करते हैं. सपा के मुख्यमंत्री उम्मीदवार अखिलेश यादव महज 44 वर्ष की उम्र के सबसे कम उम्र के नेता हैं. 2012 से वे उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री हैं, जब वे 39 साल के थे. इससे पहले वे लगातार तीन बार सांसद भी रह चुके हैं. समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव ने अपने पुत्र अखिलेश यादव को वर्ष 2012 में प्रदेश की सत्ता पर अधिस्थापित किया, लेकिन उन्हें यह भान नहीं था कि पांच साल आते-आते अखिलेश उन्हें ही राष्ट्रीय अध्यक्ष पद से विस्थापित कर देंगे. अखिलेश यादव की मां मालती देवी मुलायम सिंह यादव की पहली पत्नी थीं. अखिलेश तीन बच्चों के पिता हैं. उनकी पत्नी डिम्पल यादव कन्नौज से सांसद हैं. विकास की तरफदारी करने वाले अखिलेश यादव ने मेट्रो रेल का काम, हाई-वे और गोमती नदी का लखनवी चेहरा सुंदर बनाने का काम किया लेकिन अन्य प्राथमिकताएं हाशिए पर चली गईं. गायत्री प्रजापति जैसे भ्रष्ट मंत्रियों और यादव सिंह जैसे भ्रष्ट नौकरशाहों को संरक्षण देने के कारण अखिलेश की स्वच्छ छवि के दावों पर छींटे पड़ते रहे. वर्ष 2013 के मुजफ्फरनगर दंगों में करीब 50 लोगों के मारे जाने और करीब सौ लोगों के घायल होने का दाग तमाम 'हाई-पावर-सर्फ' लगाने के बावजूद नहीं धुला.

मायावती हैं प्रबल दावेदार दलित-मुस्लिम का है साथ

वर्ष 2012 के विधानसभा चुनाव में बुरी तरह हारी मायावती 2017 के विधानसभा चुनाव में ताकतवर तरीके से उभरती हुई दिखाई दे रही हैं. मायावती का चेहरा संभावित मुख्यमंत्रियों की दौड़ में प्रबल दावेदार है. दलित-मुस्लिम-ब्राह्मण कॉम्बिनेशन बनाने में सतत सक्रिय मायावती कांग्रेस-सपा गठबंधन से हतप्रभ जरूर हुईं, लेकिन उन्होंने अपनी दावेदारी कमजोर नहीं पड़ने दी. सपा-कांग्रेस गठबंधन के पहले तो वे यह कहती रहीं कि सपा और कांग्रेस का गठबंधन भाजपा की हरी झंडी मिलने के बाद ही होगा. मायावती का कहना था कि भाजपा के इशारे पर ही अखिलेश यादव लुप्तप्राय कांग्रेस के साथ समझौता करने पर राजी हुए. मायावती ने ऐसा कह कर मुसलमानों की नब्ज पर हाथ रखा कि भाजपाई एजेंडे का पोषण करने के कारण ही सपा ने बिहार में महागठबंधन तोड़ा. गठबंधन हो जाने के बाद मायावती भाजपा पर अधिक हमलावर तेवर के साथ सामने आईं. सपा-कांग्रेस गठबंधन के बाद तीन-तरफा मुकाबले में बसपा प्रमुख मायावती के लिए यूपी चुनाव वैसी ही प्रतिष्ठा-जनक लड़ाई है, जैसे नीतीश के लिए बिहार में थी. इसीलिए मायावती बहुमत के लिए कई कोणों से अपनी संभावनाएं तलाश सकती हैं. हालांकि यह चर्चा तो सियासी फलक पर पहले से तैर रही है कि मायावती फिर से भाजपा का समर्थन लेकर कहीं सरकार न बना लें. यह चुनाव के बाद ही तय होगा कि मायावती भाजपा अथवा कांग्रेस के साथ मिलकर सरकार बनाती हैं या कि बाहरी समर्थन से. राजनीतिक समीक्षक भी अखिलेश-राहुल गठबंधन को असरकारक तो बताते हैं, लेकिन बहुमत हासिल होने की बात पर नहीं आते. जैसा ऊपर कहा कि कांग्रेस मायावती पर तल्ख नहीं है. उसी तरह भाजपा भी मायावती पर उतनी तल्ख नहीं है, जितना कांग्रेस या सपा पर. मायावती भी यह मानती हैं कि दलित-मुस्लिम एकता के फलीभूत होते हुए भी उन्हें सरकार बनाने के लिए किसी पार्टी का साथ लेना पड़ सकता है. मायावती यह भी जानती हैं कि अखिलेश के सपा पर कब्जा कर लेने के बावजूद शिवपाल फैक्टर दफ्न नहीं हुआ है. चुनाव के बाद अगर शिवपाल समर्थकों का संख्या-बल ठीक रहा तो उनका साथ मायावती ले सकती हैं. शिवपाल के कई खास लोग मायावती के साथ जा चुके हैं और शिवपाल के लिए मायावती स्वागतीय भाषा का इस्तेमाल करती दिखी हैं. मायावती ने प्रदेश के लोगों से यह वादा भी किया है कि इस बार वे सत्ता में आईं तो पत्थर की मूर्तियां नहीं लगवाएंगी. मायावती का पूरा नाम मायावती प्रभु दास है. बहुत कम लोग जानते होंगे कि उनका एक और नाम मायावती नैना कुमारी भी है. वर्ष 2007 में बसपा ने पूर्ण बहुमत के बल पर प्रदेश की सत्ता संभाली थी और मायावती पूर्णकालिक मुख्यमंत्री बनी थीं. मायावती इससे पहले भी तीन बार छोटे-छोटे कार्यकाल के लिए 1995 और 1997 में व भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से 2002 से 2003 तक उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री रहीं. भारत के किसी राज्य की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री बनने का श्रेय मायावती को जाता है. समाजवादी पार्टी ने 2012 के चुनाव में मायावती को पराजित किया. राजनीति में आने से पहले मायावती दिल्ली के एक स्कूल में शिक्षिका थीं. 1977 में कांशीराम के सम्पर्क में आने के बाद उन्होंने पूर्ण कालिक राजनीतिक करियर अपनाया. मायावती की मुस्लिम-परस्ती पर सपा के एक वरिष्ठ नेता ने कहा कि मुसलमान इस बात को नहीं भूल पाएंगे कि मायावती के ही मुख्यमंत्रित्वकाल में सबसे ज्यादा 43 मुस्लिम नौजवानों को आतंकवाद के झूठे आरोपों में फंसाया गया था. उनका कहना था कि मुस्लिम समुदाय 'टेरर पॉलिटिक्स' खेलने के लिए मायावती को माफ नहीं कर सकता है.

भाजपा के सीएम चेहरे पर भाजपाइयों को ही भ्रम

अब आते हैं भारतीय जनता पार्टी के संभावित चेहरों पर. इन चेहरों को लेकर भाजपा में गुत्थियां अधिक हैं, लिहाजा उसे आखिर में सुलझाने का जतन किया जाए. अगर भाजपा अपनी ताकत से सरकार बनाती है तो शीर्ष नेतृत्व मुख्यमंत्री के बतौर किसे चुनती है, इसे लेकर भाजपा नेताओं में ही भ्रम की स्थिति है, तो आम नागरिकों में भ्रम रहना लाजिमी है. कई भाजपा नेताओं को यह भी अंदेशा सताता है कि हरियाणा की तरह अचानक कोई खट्टर या झारखंड की तरह अचानक कोई दास न आ जाए. इन कयासों और आशंकाओं के समानान्तर राजनाथ सिंह का नाम संभावित

(शेष पृष्ठ 3 पर)

चौथी दुनिया
हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 08 अंक 51
20 फरवरी- 26 फरवरी 2017

RNI-DELHIN/2009/30467

संपादक
संतोष भारतीय

संपादक समन्वय
डॉ. मनीष कुमार

एडिटर (इंवेस्टिगेशन)
प्रभात रंजन दीन

सहायक संपादक
सरोज कुमार सिंह (बिहार-झारखंड)
सरयू भवन, वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
हरीलाल स्वीट्स के निकट, पटना-800001
फोन: 0612 3211869, 09431421901

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63 नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.
संपादकीय 0120-6451999
6450888
विज्ञापन व प्रसार 022-65500786
+91-8451050786
+91-9266627379
फैक्स न. 0120-2544378

पृष्ठ-16++ (बिहार-झारखंड, उत्तर प्रदेश-उत्तराखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर कानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

मुख्यमंत्री कौन?

पृष्ठ 2 का शेष

मुख्यमंत्रियों में पहला नाम है. हालांकि केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह इसे सिरे से नकारते रहे हैं, लेकिन वरिष्ठता, परिपक्वता और स्वीकार्यता के नाम पर भाजपा आलाकमान राजनाथ सिंह को उत्तर प्रदेश की राजनीति में वापस भेज सकता है. राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय वरिष्ठ नेताओं को राजनाथ सिंह का कद चुभता भी है, लिहाजा उनके मुख्यमंत्री के रूप में वापस आने से राष्ट्रीय राजनीति का एक बड़ा रोड़ा भी साफ हो सकता है. राजनाथ से कुढ़ने वाले नेताओं को एक ही तीर से दो शिकार का लाभ मिल जाएगा. कुछ अर्सा पहले भी राजनाथ के नाम की चर्चा तेज हुई थी. तब यह भी संभावना बनी थी कि इलाहाबाद की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में राजनाथ सिंह को यूपी की कमान सौंपने की घोषणा हो. लेकिन अंदरूनी वजहों से यह मामला टल गया. तब राजनाथ ने इस बारे में पूछने पर कहा था, 'यूपी में नेताओं की कमी नहीं है'. राजनाथ सिंह यूपी के मुख्यमंत्री रह चुके हैं. उनके नाम पर पार्टी में यह आम सहमति है कि राजनाथ सिंह ऐसे नेता हैं, जिनका प्रभाव पूरे राज्य पर है.

पेशे से प्रोफेसर रह चुके राजनाथ सिंह अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी के बाद भाजपा के तीसरे ऐसे नेता हैं जिन्हें दो बार पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष बनने का मौका मिला. राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से राजनाथ की निकटता जगजाहिर है, फिर भी उनकी छवि सेकुलर नेता के रूप में बनी हुई है. हालांकि यह भी सच है कि जिन्ना प्रकरण से विवाद में आए आडवाणी के बाद संघ ने राजनाथ को ही पार्टी के अध्यक्ष के रूप में उपयुक्त माना था. राजनाथ सिंह 1975 में जनसंघ के मिर्जापुर जिले के अध्यक्ष भी थे. केंद्र में वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व में भी राजनाथ सिंह कृषि मंत्री थे.

भाजपा के संभावित मुख्यमंत्रियों में दूसरा सशक्त नाम योगी आदित्यनाथ का है. फायर ब्रांड नेता के रूप में चर्चित योगी आदित्यनाथ अपनी बेबाकी, प्रखरता और कट्टरता के लिए मशहूर हैं. शुरुआत में जब भाजपा का 'मुख्यमंत्री का चेहरा कौन' के सवाल पर राजनाथ सिंह का नाम चला और फिर वृष्टि-छाया-क्षेत्र में चला गया, तब योगी आदित्यनाथ का नाम जबरदस्त तरीके से उछला. यहां तक कि योगी के नाम और नेतृत्व की तमाम होर्डिंग्स प्रदेशभर में टंग गईं और गोष्ठियों से लेकर सभाओं तक मोदी-मोदी की तरह योगी-योगी होने लगा. इस पर भाजपा आलाकमान में व्यक्तित्व-संकट की ग्रंथि जाग्रत हो गई और योगी के नाम की चर्चा बंद कर दी गई. राजनीतिक समीक्षकों को यह प्रतीत हुआ कि भाजपा ने कट्टरवादी लाइन छोड़ कर नरमपंथी रुख अपना लिया है, लेकिन सच्चाई यही थी कि योगी के नाम से कई वरिष्ठ नेताओं का व्यक्तित्व-संकट उजागर होने लगा था. यह संकट इतना गहराया कि योगी को उत्तर प्रदेश की चुनाव प्रबंध समिति में भी शामिल नहीं किया गया. योगी ने जिन लोगों के लिए टिकट की सिफारिश की थी, उनमें से अधिकांश का टिकट काट दिया गया. पार्टी में विद्रोह की स्थिति पैदा हो गई. परिवर्तन यात्राओं के दरम्यान पार्टी नेतृत्व को इस विरोध का तामपान महसूस होता रहा. फिर योगी के संगठन हिंदू युवा वाहिनी ने भाजपा के खिलाफ खुला विद्रोह का ऐलान किया और वाहिनी के प्रदेश अध्यक्ष सुनील सिंह ने समानान्तर प्रत्याशियों को मैदान में उतारे जाने की घोषणा कर दी. भाजपा नेतृत्व भौंचक्का रह गया. राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह ने योगी को फौरन लखनऊ बुलाया और बातचीत की. योगी ने हिंदू युवा वाहिनी की घोषणा का सार्वजनिक खंडन जारी किया और सुनील सिंह व कुछ अन्य पदाधिकारियों की बर्खास्तगी की घोषणा हुई. लेकिन इसके बावजूद मामला थमा नहीं. प्रत्येक चुनावी सभाओं में योगी के लिए नारे लगने लगे और सवाल उठने लगे. तब भाजपा आलाकमान ने योगी को अपने स्टार प्रचारकों की लिस्ट में शुमार किया. बुलंदशहर की चुनावी सभा में योगी के भाषण के बाद बदले माहौल पर इंटेलिजेंस ब्यूरो ने जो केंद्र को रिपोर्ट भेजी, उसने भाजपा नेताओं की आंखें खोलीं. आईबी की रिपोर्ट से यह खुलासा हुआ कि योगी की सभा के बाद बुलंदशहर के साथ-साथ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई अन्य जिलों में व्यापक प्रभाव पड़ा है. इसके बाद भाजपा चेती. आनन-फानन योगी को हेलीकॉप्टर मुहैया कराया गया और उनका नाम एक बार फिर संभावित मुख्यमंत्रियों के बतौर चर्चा में आ गया. हालांकि इस बारे में योगी कहते हैं, 'मैं मुख्यमंत्री की दौड़ में कतई शामिल नहीं हूं. मैं योगी हूं और योगी ही रहूंगा'. इस पर एक भाजपा नेता कहते हैं कि यह सब तो कहने-सुनने की बातें हैं. मुख्यमंत्री बनने के बाद योगी कौन से गृहस्थ बन जाएंगे. सत्ता शीर्ष पर बैठा व्यक्ति योगी रहे तो उससे देश और समाज को फायदा ही होगा. योगी से आलाकमान की खिसियाहट इसलिए भी रही है कि वे नेतृत्व के गलत निर्णयों पर बोलने से नहीं हिचकते. मायावती पर विवादास्पद टिप्पणी करने के मामले में भाजपा के उपाध्यक्ष दयाशंकर सिंह पर हुई बर्खास्तगी की कार्रवाई पर अकेले योगी ने ही सवाल उठाया था और कहा था कि दयाशंकर सिंह पर कार्रवाई करने वाले नेताओं को संयम रखना चाहिए था. प्रसिद्ध गोरखधाम पीठ के महंत योगी आदित्यनाथ 1988 से गोरखपुर के सांसद हैं, जब वे महज 23 साल के थे. योगी के पहले उनके गुरु व गोरखनाथ पीठ के पूर्व महंत अवैद्यनाथ भी 1991 और 1996 में गोरखपुर के सांसद थे.

विवादों के नाथ... योगी आदित्यनाथ

योगी आदित्यनाथ हमेशा चर्चाओं और विवादों में रहे हैं. ऐसे कुछ विवादों की बानगियां पेश हैं... दादरी हत्याकांड पर योगी ने कहा था, 'उत्तर प्रदेश सरकार के मंत्री आजम खान ने जिस तरह यूएन जाने की बात कही है, उन्हें तुरंत बर्खास्त किया जाना चाहिए. आज ही मैंने पढ़ा कि अखलाक पाकिस्तान गया था और उसके बाद से उसकी गतिविधियां बदल गई थीं. क्या सरकार ने यह जानने की कभी कोशिश की कि ये व्यक्ति पाकिस्तान क्यों गया था. आज उसे महिमामंडित किया जा रहा है?' वर्ष 2014 में लव जेहाद को लेकर भी योगी का एक वीडियो सामने आया था. इसे लेकर काफी बावेला मचा. वीडियो में योगी आदित्यनाथ अपने समर्थकों से कहते सुनाई दे रहे थे, 'हमने फैसला किया है कि अगर वो एक हिंदू लड़की का धर्म परिवर्तन करवाते हैं तो हम 100 मुस्लिम लड़कियों का धर्म परिवर्तन करवाएंगे'. बाद में योगी ने वीडियो के बारे में कहा, 'मैं इस मुद्दे पर कोई सफाई नहीं देना चाहता. यह मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह ऐसे वीडियो दिखाने से पहले उसकी जांच कर ले'.

इसी तरह फरवरी 2015 में योगी आदित्यनाथ ने कहा था कि अगर उन्हें अनुमति मिले तो वो देश के सभी मस्जिदों के अंदर गौरी-गणेश की मूर्ति स्थापित करवा देंगे. योगी ने कहा था, 'आर्यावर्त ने आर्य बनाए, हिंदुस्तान में हम हिंदू बना देंगे. पूरी दुनिया में भगवा झंडा फहरा देंगे. मक्का में गैर मुस्लिम नहीं जा सकता है, वेटिकन सिटी में गैर ईसाई नहीं जा सकता है, लेकिन हमारे यहां हर कोई क्यों आ सकता है?' योगी ने योग पर उठे विवाद पर भी कहा था कि जो लोग योग का विरोध कर रहे हैं उन्हें भारत छोड़ देना चाहिए और जो लोग सूर्य नमस्कार को नहीं मानते उन्हें समुद्र में डूब जाना चाहिए. जनसंख्या असंतुलन पर योगी ने 2015 में कहा था कि मुस्लिमों के बीच उच्च प्रजनन दर से जनसंख्या असंतुलित हो रही है. उसी वर्ष योगी ने हरिद्वार में विश्वप्रसिद्ध तीर्थस्थल 'हर की पौड़ी' पर गैर हिंदुओं के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने की मांग की थी.

भाजपा के संभावित मुख्यमंत्रियों में तीसरा नाम केंद्रीय मंत्री मनोज सिन्हा का भी है. मनोज सिन्हा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के भरोसेमंद हैं. इस भरोसे की वजह से ही उन्हें दो-दो मंत्रालयों का दायित्व दिया गया. छात्र राजनीति का उनका पुराना अनुभव भी उनके राजनीतिक करियर का एक बेहतर अध्याय है. रेल राज्यमंत्री के रूप में भी मनोज सिन्हा ने उत्तर प्रदेश के लिए कई रेल योजनाओं को साकार करने में सार्थक भूमिका अदा की. केशव मौर्य के प्रदेश अध्यक्ष बनने के पहले मनोज सिन्हा का ही नाम प्रदेश भाजपा अध्यक्ष के लिए चल रहा था. लेकिन जातिगत समीकरणों का ध्यान रखते हुए मौर्य को मौका दिया गया. तभी से मनोज सिन्हा का नाम भी संभावित मुख्यमंत्री के रूप में लिया जाने लगा. मनोज सिन्हा भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह के भी चहेते हैं. विद्यार्थी परिषद की पृष्ठभूमि से होने के कारण संघ की भी उन पर कृपा बनी रहती है. मनोज सिन्हा आईआईटी बीएचयू से बीटेक और एमटेक दोनों हैं. वर्ष 1996, 1999 और 2014 के लोकसभा चुनाव में मनोज सिन्हा ने लगातार अपनी जीत दर्ज की है. उच्च शिक्षित मनोज सिन्हा की साफ छवि और उनका बेहतर राजनीतिक योगदान उनके मुख्यमंत्री बनने की संभावनाओं को काफी बल दे रहा है.

उत्तर प्रदेश के संभावित मुख्यमंत्रियों की भाजपाई सूची में केंद्रीय मंत्री डॉ. महेश शर्मा का नाम भी शुमार है. नोएडा से डॉ. महेश शर्मा के सांसद प्रतिनिधि संजय बाली को टिकट न देकर राजनाथ सिंह के पुत्र पंकज सिंह को टिकट दिए जाने से शर्मा की नाराजगी भाजपा नेतृत्व तक पहुंची. यहां तक कि शर्मा के प्रतिनिधि ने भाजपा के महामंत्री और प्रतिनिधि के पद से इस्तीफा तक दे दिया. भाजपा ने राजनाथ के बेटे को टिकट देने में नोएडा की मौजूदा विधायक विमला बाथम का भी ख्याल नहीं रखा. इस मसले पर डॉ. महेश शर्मा ने अनुशासन से काम लिया और पार्टी नेतृत्व का भरोसा हासिल किया. सूत्र बताते हैं कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह पिछले काफी अर्से से महेश शर्मा की जिम्मेदारियां बढ़ाने के बारे में विचार कर रहे हैं. यह जिम्मेदारी उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में भी हो सकती है. महेश शर्मा के नाम पर संघ को भी कोई आपत्ति नहीं है. उत्तर प्रदेश के गौतम बुद्ध नगर से सांसद डॉ. महेश शर्मा पेशे से चिकित्सक रहे हैं. कैलाश हॉस्पीटल चेन डॉ. महेश शर्मा का ही है. कांग्रेस और समाजवादी पार्टी पर तीखे प्रहार और करारे व्यंग्य के कारण भी डॉ. महेश शर्मा भाजपा नेतृत्व से सराहे जाते रहे हैं. नोटबंदी और सपा-कांग्रेस गठबंधन पर उनकी प्रतिक्रियाएं भाजपा गलियारे में काफी चर्चा में रही थीं.

यह भी सच है कि मुसलमानों ने भाजपा की संभावनाएं रोकने के लिए ही मायावती को समर्थन देने का मन बनाया है, लिहाजा अब भाजपा के साथ जाने में मायावती को कुछ व्यवहारिक मुश्किलें आ सकती हैं. पर एक और स्थिति के बारे में आप कल्पना करें कि चुनाव बाद क्या भाजपा अखिलेश का साथ देकर सपा नेतृत्व की सरकार बनवा सकती है? सियासत में कुछ भी संभव है, यह कहना बहुत आसान है, लेकिन बिहार में महागठबंधन से अलग होने से लेकर सपा के पारिवारिक कलह के नेपथ्य में जो शक्तियां सक्रिय दिखती रही हैं, वह अब निष्क्रिय थोड़े ही हो गई हैं.

क्या अखिलेश राहुल और मायावती भी हो सकते हैं साथ!

गठबंधन के बाद से लेकर आज तक कांग्रेस-सपा की जितनी भी साझा रैलियां हुईं किसी में भी अखिलेश या राहुल ने मायावती पर हमला नहीं किया. ऐसे संदर्भों का हवाला देते हुए कई राजनीतिक समीक्षक दूर की कौड़ी भी फेंकते हैं कि क्या कभी अखिलेश राहुल और मायावती भी एक साथ आ सकते हैं! बिल्कुल ही अधर में लटके भ्रमित जनादेश के आने पर ऐसा हो सकता है. हंग-असेम्बली की स्थिति में अखिलेश की बुआ और राहुल की आदरणीय मायावती जी काम आ सकती हैं. राजनीतिक विश्लेषक यह मानते हैं कि सपा और कांग्रेस के बीच हुआ गठबंधन अभी और आगे बढ़ने वाला है और 2019 के पहले इसमें कई और दल शामिल होंगे. यह गठबंधन केवल यूपी चुनाव तक ही सीमित नहीं रहने वाला है. पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री व तृणमूल कांग्रेस की नेता ममता बनर्जी और बिहार के मुख्यमंत्री व जद (यू) नेता नीतीश कुमार ने यूपी में अपने उम्मीदवार नहीं देकर भविष्य में शक्ल लेने वाले ऐसे ही सियासी समीकरण का संकेत दिया है. सब मिल कर कांग्रेस-सपा गठबंधन को मदद पहुंचा रहे हैं. मायावती अलग चुनाव जरूर लड़ रही हैं, लेकिन भविष्य में उन्हें भी महागठबंधन में शरीक होने का विकल्प जरूरी नजर आएगा. 2019 के लोकसभा चुनाव में भाजपा के खिलाफ साझा-शक्ति के साथ उतरने की अभी से तैयारी हो रही है. उत्तर प्रदेश के नजरिए से देखें तो यदि सपा, बसपा और कांग्रेस मिलकर भविष्य में लोकसभा का चुनाव लड़ते हैं तो भाजपा के लिए अत्यंत मुश्किल होगी. उत्तर प्रदेश की 80 लोकसभा सीटों में से जो पार्टी सबसे अधिक सीटें जीत लेती है, केंद्र में उसकी सरकार बनना तय हो जाता है. सपा-कांग्रेस का अकेला गठबंधन भाजपा को रोक पाने में उतना सक्षम नहीं होगा, जितना मायावती को साथ लेकर. आप याद करें, कुछ अर्सा पहले मुलायम सिंह यादव ने बसपा को साथ लेने की संभावना जताई थी. हालांकि मायावती ने ऐसी किसी संभावना को उस समय सिरे से नकार दिया था. मायावती के मन में गेस्ट हाउस कांड लगातार चुभता रहता है. उनका सारा गुस्सा मुलायम के प्रति है, अखिलेश के प्रति नहीं. अब मुलायम प्रसंग इतिहास की ही बात रह गई है. त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में मायावती अखिलेश को समर्थन देकर यूपी में सरकार बनवा सकती हैं और इस शर्त पर अपने लिए केंद्र में जगह रिजर्व करा सकती हैं. ताकि केंद्र में कांग्रेस की सरकार बने तो मायावती उसमें खास रोल में रहें. राजनीतिक समीक्षक खुद कहते भी हैं कि अभी यह असंभव जैसा विचार है, लेकिन विचार का एक यह भी आयाम है.■

feedback@chauthiduniya.com

बहुत दूर है औद्योगिक निवेश की मंज़िल

चौथी दुनिया ब्यूरो

बिहार

2005 में बिहार के सत्ता परिवर्तन को एक नई उम्मीद और नए सबेरे के रूप में प्रचारित किया गया था. काफी हद तक यह परिवर्तन अनेक क्षेत्रों में सकारात्मक बदलाव ले कर आया भी. एक दशक में बिजली, सड़क, स्वास्थ्य और कानून व्यवस्था के स्तर पर बिहार में आए परिवर्तन को सराहा भी गया. लेकिन इन दस वर्षों में जो सबसे बड़ी चिंता और चुनौती थी, वह थी बिहार में औद्योगिक निवेश की. 2007-10 तक यह कहा और बताया जाता रहा था कि राज्य में जब तक बुनियादी सुविधाएं स्तरीय नहीं होंगी, तब तक निजी निवेश संभव नहीं होगा. इन वर्षों में हर दिशा में तरक्की हुई, लेकिन इन वर्षों में निजी निवेश और इन निवेशों से रोजगार सृजन की दिशा में हुए कामों पर नजर जाती है, तो एक लम्बी मायूसी छा जाती है. राज्य सरकार ने नए निवेश को आकर्षित करने के लिए औद्योगिक नीति बनाई. निवेश के लिए निवेश संवर्धन बोर्ड बनाया. निवेशकों को आकर्षित करने के लिए उनसे मुलाकातों का लम्बा दौर चला. अनिवासी बिहारियों को जोड़ने के लिए बिहार फाउंडेशन बना. इस फाउंडेशन के अलग-अलग देशों में चैप्टर खोले गए, निवेशकों के लिए अनेक सम्मेलन आयोजित किए गए. एक दशक से भी ज्यादा के इन प्रयासों से जो परिणाम सामने आए हैं, उन्हें देख कर लगता है कि अभी बिहार के लिए मंजिल बहुत दूर, बहुत ही दूर है.

नीतीश कुमार ने अपने दूसरे शासनकाल की शुरूआत (2010) में निवेश और औद्योगिक घरानों को आकर्षित करने की दिशा में काफी प्रयास किया था. देश के सबसे बड़े औद्योगिक घराने रिलायंस के प्रमुख मुकेश अंबानी को बुला कर उनका रेडकार्पेट वेलकम तक किया गया था, लेकिन उन्होंने भी निवेश का न तो कोई ठोस प्रस्ताव सामने रखा और न ही किसी अन्य बड़े घरानों ने कोई दिलचस्पी दिखाई. औद्योगिक घरानों के निराश करने वाले रवैये के बाद राज्य सरकार ने भी शायद यह मान लिया कि उन पर समय और ऊर्जा लगाने से ज्यादा बेहतर है कि छोटे उद्यमियों को ही प्रोत्साहित किया जाए. लेकिन यह काम इसलिए भी जोखिम भरा था कि राज्य सरकार के पास उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए कोई ठोस पॉलिसी नहीं थी. इसके बाद राज्य सरकार ने औद्योगिक नीति पर काम शुरू किया. इसके लिए राज्य के प्राकृतिक संसाधनों को ध्यान में रखते हुए कृषि से जुड़े उद्योग और निवेश पर ध्यान केंद्रित किया गया. बिहार में कृषि क्षेत्र में निवेश की सबसे बड़ी संभावना चीनी उत्पादन के सेक्टर में है. किसी भी अन्य राज्य की तुलना में बिहार में ईख या गन्ना उत्पादन की संभावना बिहार में है. यहां की उपजाऊ मिट्टी और आबो हवा गन्ना उत्पादन के अनुकूल है. लेकिन सिंचाई, खाद और दीगर संसाधनों की कमी एक बड़ी चुनौती रही है. इसलिए कभी चीनी उत्पादन में अग्रणी रहा यह राज्य आज इस मामले में छठे पायदान पर है. 90 का दशक आते-आते यहां की अनेक चीनी मिलें बंद हो गईं. हालांकि 2008 के बाद अनेक चीनी मिलें खुली हैं और उत्पादन में इजाफा होना भी शुरू हुआ है, परंतु अब भी इस सेक्टर में काफी संभावनाएं हैं. उत्तर बिहार के नरकटियागंज और हरिनगर समेत कुछ और क्षेत्रों में चीनी मिलों की स्थापना हुई और उत्पादन भी शुरू हुआ. इसी तरह जूट उत्पादन के क्षेत्र में बिहार देश का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है, लेकिन जहां तक जूट आधारित उद्योगों की बात है, तो इसमें यह फिसड्डी है. सरकारी स्तर पर इस क्षेत्र में पूंजी निवेश के लिए निवेशकों के प्रोत्साहन की बात तो कही जाती है, लेकिन निवेश के स्तर पर हालात संतोषजनक नहीं हैं.

उधर निवेशकों के अनुकूल नीति बनाने के लिए उद्योग जगत ने हमेशा ही बिहार सरकार पर जोर दिया. औद्योगिक विकास और निवेश के लिए राज्य सरकार ने बिहार औद्योगिक प्रोत्साहन नीति 2016 बनाई है, जिसमें निवेशकों के लिए अनेक सुविधाओं का प्रावधान है. साथ ही सरकार ने मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन भी किया गया है, जो उद्योग जगत से फीडबैक मिलने के बाद उद्योग नीति में आवश्यक प्रावधान जोड़ने की दिशा में काम कर रही है. इस नीति की घोषणा के बाद वेदांता रिसोर्सेज के संस्थापक अनिल अग्रवाल ने कहा कि उनकी तरफ से बिहार में एक खनिज प्रसंस्करण संयंत्र और एक विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय शुरू करने की योजना है. हालांकि अनिल अग्रवाल की घोषणा के लगभग पांच महीने हो गए हैं, लेकिन अब तक इसकी कोई स्पष्ट रूपरेखा सामने नहीं आई है. गौरतलब है कि अनिल अग्रवाल बिहार के हैं और उनका वेदांता समूह दुनिया की नामचीन कम्पनियों में शुमार है. अगर वेदांता इस दिशा में कदम बढ़ाता है, तो संभव है कि उनका निवेश अब तक का सबसे बड़ा निजी निवेश माना जाएगा. लेकिन यह तो अभी भविष्य की बात है. दूसरी तरफ जहां तक उद्योग जगत को प्रभावित करने की बात है, तो इस बारे में पीएचडी चैम्बर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज के बिहार चैप्टर के अध्यक्ष सत्यजीत कुमार ने पिछले वर्ष फरवरी में सरकार को एक पत्र लिखा था. इस पत्र में उन्होंने इस बात पर चिंता जताई थी कि पिछले दस वर्षों में राज्य सरकार लैंड बैंक बनाने में असफल रही है, वहीं दूसरी तरफ जमीन का सर्किल रेट इतना बढ़ा दिया गया है कि भूमि अधिग्रहण काफी महंगा हो चुका है. महंगी जमीन ले कर उद्योगों की स्थापना बहुत मुश्किल है. ■

feedback@chauthiduniya.com

कब हटेंगे मायूसी के बादल

बिहार में निवेश के लिए निवेश संवर्धन बोर्ड का अंतिम विलयरेंस लेना पड़ता है. बोर्ड की वेबसाइट पर 2016 में निवेश अग्रुवल की एक भी सूचना उपलब्ध नहीं है. जहां तक 2015 में निवेश प्रस्ताव की मंजूरी की बात है, तो गिनती के लिहाज से इसकी संख्या 65 है, लेकिन निवेश की राशि के लिहाज से देखें, तो ये आंकड़ें चिंता ही बढ़ाते हैं. निवेश के लिए स्वीकृत कुल 65 प्रस्तावों में से सर्वाधिक निवेश 21 करोड़ रुपए का है, जिसके तहत मेट्रोपोल विनिम प्राइवेट लिमिटेड कैमूर में रिफाइन ऑयल प्रोसेसिंग युनिट शुरू करने की योजना पर काम कर रहा है. बाकी के अन्य निवेश प्रस्तावों में से 90 प्रतिशत लघु उद्योग की श्रेणी में हैं, जिनका निवेश दो करोड़ से पांच करोड़ रुपए के बीच ही है. इन तमाम प्रस्तावों में चंद ही ऐसे हैं, जिनके तहत 10 से 18 करोड़ के निवेश होने हैं. ध्यान रहे कि ये सारे निवेश कृषि से जुड़े उत्पादों के लिए हैं और अधिकतर निवेशक बिहार के हैं. 2015 में राज्य निवेश बोर्ड के आंकड़ों को देखें, तो उसके द्वारा मंजूर किए गए कुल निवेश प्रस्ताव 250 करोड़ से ज्यादा नहीं हैं. इतने बड़े राज्य में ढाई सौ करोड़ का निवेश ऊंट के मुंह में जीरा जैसा है. राज्य निवेश संवर्धन बोर्ड के गठन से ले कर अब तक जो आंकड़े सरकार के पास उपलब्ध हैं, उनके अनुसार पिछले 11 वर्षों में बिहार में कुल 4 हजार 800 करोड़ के निवेश हुए हैं. इस निवेश से अब तक राज्य में 314 इकाइयां कार्यरत हैं. इन तमाम इकाइयों में 13 हजार लोगों को रोजगार मिला हुआ है. इस तरह देखें तो 11 करोड़ आबादी और क्षेत्रफल के लिहाज से दुनिया के अनेक देशों से बड़े इस राज्य में पिछले 11-12 वर्षों में निजी क्षेत्र में महज 5 हजार करोड़ का निवेश हुआ है, जो मायूस करने वाला है. इन मायूसियों के वैसे तो अनेक कारण हैं, लेकिन कुछ सबसे महत्वपूर्ण वजहें ये हैं कि अब तक कोई बड़ा औद्योगिक समूह बिहार नहीं आया. ■

मणिपुर विधानसभा चुनाव

मुस्लिम संगठनों ने किया मुस्लिम महिला उम्मीदवार का विरोध

हार नहीं मानूंगी, रार नई ठानूंगी: नजिमा बीबी

सलाम बिजेन सिंह

मणिपुर के चुनावी इतिहास में यह पहली बार हो रहा है कि कोई मुस्लिम महिला उम्मीदवार चुनाव मैदान में उतरी हो. नजिमा बीबी मणिपुर की पहली मुस्लिम महिला उम्मीदवार हैं. चार मार्च को हो रहे राज्य के पहले चरण के चुनाव में नजिमा, इरोम शर्मिला की पार्टी पीपुल्स रिसर्जेन्स एंड जस्टिस एलाइन्स पार्टी (प्रजा) से चुनाव लड़ने जा रही हैं. नजिमा प्रजा पार्टी की सह-संस्थापक भी हैं. उनका कहना है कि वह गरीबों और शोषितों की आवाज बनकर चुनाव मैदान में उतरी हैं. वह राज्य के अल्पसंख्यक समुदायों के बीच जाकर चुनाव चुनाव प्रचार कर रही हैं. हालांकि नजिमा के चुनाव मैदान में उतरने के ऐलान से मणिपुर के तमाम मुस्लिम संगठन खफा हैं. ये संगठन नजिमा को चुनाव मैदान से हटाने के लिए तमाम तरह के हथकंडे अपना रहे हैं. इन संगठनों ने नजिमा को धमकी भी दी है कि मरने के बाद उनको दफनाने के लिए भी जमीन नहीं दी जाएगी. इस धमकी का विरोध करते हुए नजिमा ने उन मुस्लिम संगठनों से सवाल किया कि उनकी क्या गलती है और वे क्यों चुनाव नहीं लड़ें? नजिमा ने पूछा है कि क्या मैं महिला हूं इसलिए चुनाव नहीं लड़ सकती? यह विडंबना ही है कि एक तरफ पूरी दुनिया में महिला सशक्तिकरण के नाम पर आंदोलन हो रहे हैं और दूसरी तरफ महिलाओं के चुनाव प्रक्रिया में हिस्सा लेने पर पाबंदी लगाई जा रही है. नजिमा बीबी के चुनाव लड़ने पर पाबंदी लगाने वाले संगठन महिलाओं को घर में कैद रखकर धर्म और समाज के प्रति क्या प्रतिमान स्थापित करना चाहते हैं.

मणिपुर में मुस्लिमों की आबादी कुल आबादी की छह प्रतिशत है. यहां दो मुस्लिम बहुल विधानसभा क्षेत्र हैं, लिलोंग और वाबगाई. नजिमा दोनों मुस्लिम बहुल विधानसभा सीटों से चुनाव लड़ेंगी. स्थानीय राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार, नजिमा के चुनाव मैदान में आने से कांग्रेस को नुकसान हो सकता है. राज्य के अल्पसंख्यक मुस्लिमों का झुकाव पिछले कई वर्षों से कांग्रेस की तरफ ही रहा है. हालांकि यह भी सच है कि कांग्रेस ने अब तक सियासी फायदे के लिए ही इनका इस्तेमाल किया है, जमीनी स्तर पर इनके विकास के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया है. नजिमा के चुनाव मैदान में उतरने का यह भी एक कारण है. नजिमा सत्ता में भागीदार होकर अपने समुदाय के पिछड़ेपन को दूर करना चाहती हैं.

29 जनवरी को नजिमा बीबी समेत प्रजा पार्टी के अन्य नेताओं ने मणिपुर की गवर्नर नजमा हेपतुल्ला से मुलाकात की. इन नेताओं ने राज्यपाल से मांग की कि मणिपुर के हित में अफ्सपा को तत्काल हटा देना चाहिए. मणिपुर यूनिवर्सिटी के कैंपस में बने असम रायफल्स के कैंप को भी हटाने की मांग की गई. मणिपुर की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के मुद्दे पर इन्होंने राज्यपाल से बातचीत की. नजिमा बीबी ने राज्यपाल को इस बात से भी अवगत कराया कि उनके चुनाव लड़ने के ऐलान से राज्य के मुस्लिम संगठनों को ऐतराज है और उन्होंने नजिमा को धमकी दी है.

नजिमा बीबी के अब तक के सफर पर गौर करें, तो साफ समझा जा सकता है कि मणिपुर में महिला सशक्तिकरण की बात कितनी खोखली है. नजिमा को बचपन से ही विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है. वह जब छठी कक्षा में थीं, तो क्लास में अकेली लड़की थी. स्कूल के समय में भी उन्हें यौन उपहास झेलना पड़ा था. यही कारण भी था कि घर वालों ने छोटी उम्र में ही नजिमा की शादी कर दी. हालांकि यह शादी ज्यादा दिन नहीं चली और एक साल बाद ही नजिमा अपने पति से अलग हो गईं. नजिमा स्वाभिमानी और स्वावलंबी महिला हैं. तलाक के बाद वह अपने घर लौटीं और मोहल्ले की अन्य महिलाओं के साथ मिलकर बचत कोष शुरू किया. इस बचत कोष में महिलाएं हर रोज एक मुट्ठी चावल इकट्ठा करतीं और एक महीने के बाद चावल को बेचकर उसी पैसे का इस्तेमाल पशुपालन में करती थीं. नजिमा ने स्थानीय महिलाओं के लिए सेल्फ हेल्प ग्रुप भी शुरू किया था. जब ये महिलाएं अपने पैरों पर खड़ी हुईं, तो इनमें घरेलू हिंसा से लड़ने के लिए भी बल मिला.

हालांकि पार्टी की संयोजक इरोम शर्मिला नजिमा के साथ मजबूती से खड़ी हैं. उन्होंने कहा भी है कि हमारी पार्टी महिलाओं को ज्यादा सशक्त बनाने पर बल दे रही है. यही कारण है कि प्रजा पार्टी की 40 प्रतिशत उम्मीदवार महिलाएं हैं और कार्यकारी सदस्यों में भी अधिकतर महिलाएं ही हैं. हालांकि प्रजा पार्टी की संयोजक इरोम शर्मिला ने अपनी पार्टी की तरफ से सिर्फ 10 सीटों पर ही उम्मीदवार उतारने का फैसला किया है. इन सामाजिक चुनौतियों के बीच शर्मिला और नजिमा के सामने एक बड़ी समस्या चुनावी फंड की भी है. शर्मिला ने मीडिया के सामने कहा भी कि नई पार्टी होने के कारण उनके सामने फंड का संकट है. प्रजा पार्टी चुनावी चंदे के द्वारा अब तक साढ़े लगभग चार लाख रुपए ही इकट्ठा कर पाई है. इसमें से भी ज्यादातर चंदे ऑनलाइन माध्यमों से मिले हैं. कैश या चेक के माध्यम में अब तक केवल 60-70 हजार ही इकट्ठा हो पाया है. चुनाव आयोग के अनुसार राज्य में एक कैंडिडेट को 20 लाख तक खर्च करने की अनुमति है. लेकिन प्रजा पार्टी की तरफ से चुनावी मैदान में उतर रहे 10 उम्मीदवारों को चुनावी खर्च के लिए मात्र 40 हजार रुपये प्रति उम्मीदवार ही मिल पाएगा. इसी फंड की कमी के कारण चुनाव प्रचार के लिए शर्मिला और नजिमा इंफाल से 35 किमी दूर तक भी साइकल चलाकर ही जाती हैं. उनके साथ पार्टी के अन्य कार्यकर्ता भी साइकल से ही होते हैं.

इन सबके बीच मणिपुर में आर्थिक नाकेबंदी की समस्या जस की तस बनी हुई है. 100 दिन से भी ज्यादा हो गए लेकिन हालात में सुधार देखने को नहीं मिल रहा है. लोगों की परेशानी दिन ब दिन बढ़ती जा रही है. केंद्र, मणिपुर सरकार और यूएनसी के नेताओं के बीच बातचीत भी हुई, लेकिन कोई ठोस नतीजा सामने नहीं आ रहा है. बिना नाकेबंदी हटाए आगामी 4 और 8 मार्च को विधानसभा चुनाव सफलतापूर्वक कराए जा सकेंगे, इसकी भी संभावना कम ही है. ■

feedback@chauthiduniya.com

विधानसभा चुनाव 2017

क्या कहता है नेताओं का टैरो कार्ड

अलंकृता मानवी

पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव हो रहे हैं. इस अंक में पंजाब, गोवा और मणिपुर की प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के नेताओं का भविष्य टैरो कार्ड के माध्यम से पेश किया जा रहा है. अगले अंक में हम उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड और प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं का भविष्य बताएंगे.

लेखिका मशहूर टैरो कार्ड रीडर हैं. आप भी अगर टैरो कार्ड के ज़रिए अपना भविष्य जानना चाहते हैं, तो संपर्क करें 9717002199

पंजाब

प्रकाश सिंह बादल

इस कार्ड को शुद्धोधन कार्ड कहते हैं. ये कार्ड लिमिटेशंस बता रहा है, जैसे शुद्धोधन ने सिद्धार्थ को एक सीमा के भीतर बांध कर रखा था. ठीक वैसे ही प्रकाश सिंह बादल भी एक सीमित दायरे में बंधे रह गए. अगर वे इस दायरे को विस्तार देते, तो शायद ठीक से सरकार चला पाते. लेकिन, राजा बने रहने की चाहत में वे ऐसा नहीं कर पाए. इनका दूसरा कार्ड है, मिसफॉर्च्यून कार्ड. इस कार्ड के मुताबिक इस चुनाव में उनका पूरा सिस्टम चेंज हो जाएगा. यह चुनाव उनके लिए फायदेमंद नहीं होने जा रहा है.■

सुखबीर सिंह बादल

इनके कार्ड का नाम है, पिग कार्ड. यह एक नकारात्मक कार्ड है. ये अपनी मस्ती में रहते हैं. इन्हें कोई सही सलाह नहीं मिलती है. इनके आस-पास नकारात्मक ऊर्जा भरी हुई है. जाहिर है, राज्य में फैले ड्रग्स के रैकेट के लिए भी यही नकारात्मक ऊर्जा जिम्मेवार है. इस कार्ड के मुताबिक, सुखबीर सिंह हाल-फिलहाल मुख्यमंत्री तो नहीं ही बन पाएंगे.■

कैप्टन अमरिन्दर सिंह

इनका कार्ड फिलिंग कार्ड है. ये काफी सचेत है. चुनाव को ले कर इन्हें भावनात्मक समस्या आ रही है. इनका एक कार्ड और भी है, जो न्यूट्रल कार्ड है, यानी आगे इनकी छवि में सुधार भी आएगा, लेकिन इन्हें इसके लिए मेहनत करनी पड़ेगी. इनमें भय की भावना हावी है, काफी बोझ तले दबा महसूस करते हैं. हालांकि इन सब में आगे सुधार आएगा. मुख्यमंत्री पद की बात करें, तो कह सकते हैं कि इनके अवसर सकारात्मक हैं, लेकिन इसके लिए इन्हें बाहर से सहयोग की जरूरत है.■

अरविंद केजरीवाल

इनका कार्ड क्रिएटिविटी कार्ड है. चुनाव में जिस तरह से ये मेहनत कर रहे हैं, उससे इन्हें लोकप्रियता तो मिल रही है, लेकिन इनका एक कार्ड लिमिटेशन कार्ड भी है. लिमिटेशन कार्ड बताता है कि जैसा परिणाम ये सोच रहे हैं, वैसा होगा नहीं. इनका एक और कार्ड आया है, जिसमें एक व्यक्ति अपना नज्ज दिखा रहा है. यह कार्ड बताता है कि इनके स्वास्थ्य में कमी आएगी. इनके लिए स्पष्ट जीत के आसार नहीं दिखते. पंजाब की बात करें, तो यहां गठबंधन सरकार के आसार अधिक दिख रहे हैं.■

नवजोत सिंह सिद्धू

इनके कार्ड का नाम है डाउनफॉल कार्ड. इनमें भय की भावना काफी अधिक थी. इनका एक कार्ड न्यूट्रल भी है, जो बताता है कि आगे कोई बहुत अच्छा नहीं होने जा रहा है. जो परिणाम वे चाहते हैं, उन्हें नहीं मिलेगा. राजनीति के लिए इनका कार्ड भिक्षु कार्ड है, जो बताता है कि राजनीति में उनके लिए उदासीनता की स्थिति ही रहेगी.■

गोवा

मनोहर परिकर

इनके कार्ड का नाम है, जस्टिस कार्ड. इस कार्ड के मुताबिक ये जितना अच्छा काम करेंगे उतना ही अच्छा परिणाम मिलेगा. इनका एक कार्ड न्यूट्रल कार्ड है. इसका अर्थ है कि ये चुनाव इनके लिए एक लर्निंग (सीख) साबित होगी. ■

अरविंद केजरीवाल

इनका जो कार्ड है वो डाउनफॉल और लिमिटेशन दिखाता है. इसका अर्थ है कि केजरीवाल गोवा में उतना बेहतर नहीं कर पाएंगे, जितना उन्होंने सोचा होगा. ■

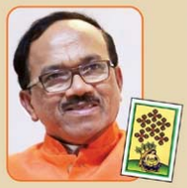

लक्ष्मीकांत पारसेकर

इनके कार्ड का नाम है, मदर कार्ड और विश कार्ड. इस कार्ड के मुताबिक इनका भविष्य काफी उज्ज्वल है. संभव है कि इस चुनाव के बाद उनकी इच्छाएं पूरी हो जाए. इस लिहाज से देखें तो इस चुनाव में इनका भविष्य काफी उज्ज्वल दिख रहा है.■

मणिपुर

इरोम शर्मिला

इनके कार्ड का नाम है, तारा कार्ड. इस कार्ड के मुताबिक अगर इरोम शर्मिला सत्ता में आती हैं, तो मणिपुर में एक नया दौर आएगा.■

ओक्रम इबोबी सिंह

इनके कार्ड का नाम है सिक्स ऑफ डबल वज्र कार्ड. यह एक अच्छा कार्ड है. यह कार्ड बताता है कि सकारात्मक ऊर्जा इनकी मदद कर रहा है और ये चुनाव में अच्छा करेंगे.■

भावानंद सिंह

इनके नाम से जो कार्ड आया है, उसका नाम है फाइव ऑफ ज्वेल्स कार्ड. यह कार्ड बताता है कि अभी तो नहीं, लेकिन आगे इस पार्टी का मणिपुर में भविष्य अच्छा है.■

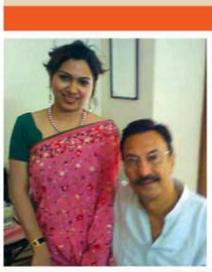

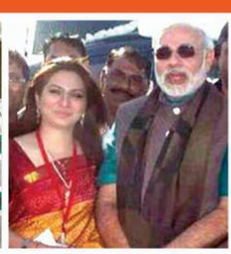

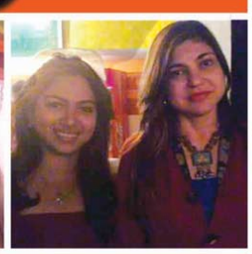

जम्मू-कश्मीर : मारने वाला कौन और मरने वाला कौन?

गठबंधन सरकार के कितने दिन बाक़ी

हारून रेशी

ऐसा लगता है कि भाजपा ने जम्मू-कश्मीर में अपनी सहयोगी पार्टी पीडीपी को जनता की नज़रों में रुस्वा करके छोड़ने की ठान रखी है. 31 जनवरी को विधानसभा में भाषण देते हुए मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती ने केवल इतना कहा था कि 'धारा 370 को ख़त्म करने वाले देश के दुश्मन कहलाए जा सकते हैं.' बस इतनी सी बात पर भाजपा ने सदन में अपनी सहयोगी पार्टी के साथ पूर्ण मतभेद दिखाया. स्थिति उस समय हास्यास्पद हो गई जब विधानसभा स्पीकर कविंदर गुप्ता (जो भाजपा के सदस्य हैं) ने मुख्यमंत्री की टिप्पणी को रिकार्ड से हटाने का आदेश दिया. ऐसा पहली बार हुआ है कि विधानसभा में सदन के नेता के किसी बयान को रिकार्ड से हटाया गया हो. सहयोगी पार्टियों की इस खींचतान का विपक्ष ने भरपूर फायदा उठाया. विपक्ष के नेताओं ने निरंतर दो दिनों तक सदन में इतना हंगामा किया कि विधानसभा सत्र को 6 दिनों तक रह कर दिया गया.

फिलहाल घाटी के सियासी और अवामी गलियारों में यह धारणा मजबूत हो रही है कि पीडीपी केवल सत्ता को बहाल रखने के लिए भाजपा के सारे नाज़-नख़रे बर्दाश्त कर रही है. विश्लेषकों के एक बड़े वर्ग का मानना है कि गठबंधन सरकार के गठन के बाद से ही भाजपा जम्मू-कश्मीर में अपने राजनीतिक एजेंडे को पूरा करने का सफल प्रयास कर रही है. पीडीपी भी हर मामले में भाजपा के सामने आत्म समर्पण करती नज़र आ रही है. इसकी ताज़ा मिसाल 25 जनवरी को उस समय देखने को मिली, जब भाजपा विधायक और महाराजा हरि सिंह के पोते अजातशत्रु ने सदन में एक प्रस्ताव पेश करते हुए मांग की कि उनके दादा महाराजा हरि सिंह की सेवाओं की स्वीकारोक्ति के रूप में उनके

जन्मदिन को अधिकारिक रूप से मनाने का सिलसिला शुरू किया जाए. प्रस्ताव में कहा गया कि जम्मू-कश्मीर के प्रति महाराजा हरि सिंह के योगदान की स्वीकारोक्ति में प्रत्येक वर्ष उनके जन्मदिन पर सरकारी अवकाश मनाया जाना चाहिए. भाजपा सदस्यों ने तो अजातशत्रु के प्रस्ताव का समर्थन किया ही, पीडीपी ने भी इसका पूर्ण समर्थन करके इसे पास कराने में मदद की. अब प्रत्येक वर्ष महाराजा हरि सिंह के जन्मदिन पर 23 सितंबर को जम्मू-कश्मीर में सरकारी छुट्टी होगी. महाराजा हरि सिंह कश्मीर पर 100 सालों तक शासन करने वाले डोगरा शासकीय परिवारों के अंतिम राजा थे.

हालांकि बीते 70 वर्षों में विधानसभा में पहली बार पास हुआ ऐसा प्रस्ताव राज्य की जनता और सियासी गलियारों में चर्चा का विषय बना हुआ है. लोगों के बीच ये सवाल उठने लगे हैं कि प्रस्ताव को समर्थन देने वाली पीडीपी, महाराजा हरि सिंह को एक न्यायप्रिय राजा मानती है या एक निरंकुश शासक. क्योंकि पीडीपी भी रियासत के दूसरे दलों की तरह डोगरा शासन को निरंकुशता का दौर मानती रही है. राज्य में प्रत्येक वर्ष 13 जुलाई को अधिकारिक रूप से 'कश्मीर शहीद दिवस' मनाया जाता है. इस दिन सरकारी छुट्टी होती है और मुख्यमंत्री अपने कैबिनेट सदस्यों के साथ उन 22 शहीदों की क़ब्र 'मजार-ए-शोहदा' पर फूल चढ़ाते हैं, जिन्हें 13 जुलाई 1931 को श्रीनगर में महाराजा की सेना ने गोलियों से भून डाला था. महाराजा के ख़िलाफ़ जनता के विद्रोह का नेतृत्व नेशनल कांफ्रेंस के संस्थापक मोहम्मद शेख़ अब्दुल्ला ने किया था. नेशनल कान्फ्रेंस और पीडीपी जैसे दलों का अब तक यही रुख़ रहा है कि महाराजा हरि सिंह के ख़िलाफ़ बग़ावत दरअसल 'स्वतंत्रता संघर्ष' था और इसमें मारे जाने वाले लोग शहीद हैं. इन पार्टियों का मानना है कि इस 'स्वतंत्रता संग्राम' का ही नतीजा था कि 1947 में महाराजा का शासन ख़त्म हुआ और राज्य स्वतंत्र हो पाया. यही कारण है कि पिछले 70 वर्षों में कभी भी किसी ने महाराजा हरि सिंह की याद में कोई दिन मनाने की बात या इसकी मांग नहीं की है. विश्लेषक भाजपा के प्रस्ताव पर हैरान नहीं हैं, लेकिन इस प्रस्ताव को पीडीपी के सभी और नेशनल कान्फ्रेंस के भी कुछ सदस्यों के समर्थन पर वे आश्चर्यचकित हैं. मशहूर सामाजिक कार्यकर्ता और राजनीतिक विश्लेषक ज़रीफ़ अहमद कहते हैं कि अब तो हमें यह फैसला करना होगा कि मारने वाला कौन है और मरने वाला कौन? पीडीपी और नेशनल कान्फ्रेंस महाराजा हरि सिंह के शासनकाल को कश्मीर की गुलामी का दौर क़रार देती हैं. अगर ऐसा है तो महाराजा का जन्मदिन मनाने का क्या तर्क है. भाजपा तो बहरहाल अपने एजेंडे पर काम कर रही है, लेकिन पीडीपी और नेशनल कांफ्रेंस का रवैया समझ से बाहर है. पीडीपी ने तो सत्ता को बहाल रखने के लिए हर मामले में भाजपा के सामने सरेंडर किया है.

मजार-ए-शोहदा

पिछले दो वर्षों के हालात और घटनाओं को देखकर ये बात स्पष्ट हो गई है कि मार्च 2015 में भाजपा जम्मू-कश्मीर में पहली बार सत्ता के गलियारों तक पहुंचने के तुरंत बाद राज्य में अपने राजनीतिक एजेंडे को लागू करने के मिशन में लग गई है. विश्लेषकों का मानना है कि भाजपा एक ओर अपने एजेंडे को लागू कर रही है और दूसरी ओर पीडीपी को डिक्टेट करने में लगी हुई है. पत्रकार तारिक अली मीर कहते हैं कि पीडीपी ने चुनावी मुहिम के दौरान जनता से वादा किया था कि सत्ता में आते ही वो कश्मीर के राजनीतिक कैदियों को रिहा कराएगी, लेकिन भाजपा के दबाव के कारण वो ऐसा नहीं कर सकी. उसने कहा था कि नेशनल हाइड्रो पॉवर कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (एनएचपीसी) अधिग्रहण में राज्यों के पॉवर प्रोजेक्टों के मालिकाना हक़ उन्हें वापस दिलाए जाएंगे, लेकिन अब तो पीडीपी ने ये मांग ही खारिज कर दी. इसी प्रकार काले क़ानूनों को ख़त्म करने, हरियत और नई दिल्ली के बीच वार्ता कराने जैसे पीडीपी के वादे भी वादे ही साबित हुए. इसके उलट भाजपा अपने एजेंडे को तेज़ी के साथ अमल में ला रही है. ये भाजपा का साहस ही है कि 1970 के बाद राज्य में महाराजा हरि सिंह के नाम से दिवस मनाने की शुरुआत हो चुकी है. कुछ अजीब नहीं कि इसी सरकार में भाजपा धारा 370 को ख़त्म करने के लिए अधिकारिक शुरुआत कराएगी और पीडीपी सत्ता को क़ायम रखने के लालच में भाजपा का साथ देगी और इसके ख़िलाफ़ महज जुबानी तीर चलाएगी. क्योंकि पिछले दो वर्षों के दौरान यही कुछ देखने को मिला. पीडीपी अपनी सहयोगी पार्टी से कितनी डरी हुई है, इसका अंदाजा उस समय भी हुआ था, जब मुख्यमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद ने मंत्रियों को निर्देश दिए थे कि वे संविधान के दायरे में रहते हुए राष्ट्रीय ध्वज के साथ-साथ राज्य के ध्वज का भी बराबर सम्मान करें, लेकिन भाजपा ने उन्हें इतनी ज़बरदस्त झाड़ लगाई कि मुफ्ती को अपना ये आदेश 24 घंटे के अन्दर ही वापस लेना पड़ा.

इस पूरी स्थिति के परिदृश्य में सवाल पैदा होता है कि आख़िर पीडीपी किस हद तक भाजपा के एजेंडे को लागू कराने में उसका साथ देगी. होना तो यह चाहिए था कि जब सदन में भाजपा ने महबूबा मुफ्ती की ओर से धारा 370 पर दिए गए बयान का विरोध किया, तो जवाब में पीडीपी भी एक स्पष्ट रुख के साथ सामने आ जाती. इसी प्रकार जब भाजपा ने महाराजा हरि सिंह का जन्म दिवस सरकारी रूप से मनाने की मांग की, तो पीडीपी इसके जवाब में भाजपा को बताती कि राज्य में एक समय में 'कश्मीर शहीद दिवस' और 'महाराजा दिवस' नहीं मनाया जा सकता. लेकिन पीडीपी भीगी बिल्ली की तरह ख़ामोश है. अगर पीडीपी ये सब कुछ केवल अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए कर रही है, तो भी सवाल यह है कि इस सरकार के ख़ात्मे के बाद पीडीपी दोबारा अपने मतदाताओं के पास कौन सा मुंह लेकर जाएगी. ■

feedback@chauthiduniya.com

मध्यप्रदेश : प्रशासनिक कार्रवाई को धता बता रहे रेत का अवैध कारोबार करने वाले खनन माफ़िया

मुख्यमंत्री के आदेश के बाद भी जारी है रेत का अवैध कारोबार

सोरिन शर्मा

एक ओर जहां नमामि देवी नर्मदे मिशन ने एक जन अभियान का रूप ले लिया है, वहीं दूसरी ओर संपूर्ण प्रदेश में सरकार और प्रशासन की सक्रियता के बाद भी अवैध खनन जारी है. पूरे प्रदेश का कोई ऐसा जिला या तहसील नहीं है, जहां से अवैध खनन की खबरें राजधानी तक नहीं पहुंच रही हो. बडवानी से बालाघाट, मुरैना से मण्डला, अनूपपुर और अलीराजपुर तक लगभग सभी जगह खनन कारोबारी सरकार और प्रशासन को धत्ता बताकर अवैध खनन के धंधे में लगे हैं. कई जगहों से तो ऐसी खबरें भी आ रही हैं कि अवैध खनन में शामिल ठेकेदारों ने अधिकारियों की मिलीभगत से फर्जी सीमांकन भी करा लिया है.

हाल ही में अवैध खनन माफियाओं पर एक बड़ी कार्रवाई करते हुए पुलिस ने मुल्तानपुरा व कन्धट्टी की नौ अवैध स्लेट और पेन्सिल खदानों को ध्वस्त कर दिया. इस दौरान मुल्तानपुरा से 50 टन और कन्धट्टी से 40 टन अवैध शैल पत्थर सहित ट्राला डम्पर व ट्रैक्टर ट्राली को जब्त किया गया. कार्रवाई के लिए जिलाधिकारी स्वतंत्र कुमार सिंह के आदेश पर खनिज विभाग की जिला टास्क फोर्स की बैठक हुई थी, जिसमें एसपी, व जिला खनिज अधिकारी आदि मौजूद थे. पुलिस दल, राजस्व विभाग व खनिज विभाग की इस संयुक्त कार्रवाई का नेतृत्व एएसपी अजय प्रताप सिंह ने किया. सबसे पहले मुल्तानपुरा में कार्रवाई की

रेत माफियाओं से प्रतिमाह लाखों रुपए की धनराशि हासिल होने की वजह से सख्त कार्रवाई करने की बजाय इसकी अनदेखी की जाती रही है और प्रशासन इसे प्रश्रय देता रहा है. अनदेखी के सिलसिले पर अभी भी प्रभावी अंकुश नहीं लग सका है. हाल ही में छतरपुर और पन्ना जिले की सीमा में स्थित केन नदी से निकाले गए अवैध रेत से लदे तकरीबन 300 ट्रकों और डंपरों को पन्ना कलेक्टर के आदेश पर पुलिस, खनिज और राजस्व अधिकारियों ने जब्त किया. अभी भी केन नदी के विभिन्न घाटों से बड़े पैमाने पर रेत का अवैध उत्खनन परिवहन और बिक्री का सिलसिला जारी है.

गई, जहां खनिज विभाग की अनुमति के बगैर अवैध खनन हो रहा था. वहां पुलिस बल के धावा बोलते ही खनन में लगे लोग भाग गए. उसके बाद पुलिस दल कन्धट्टी पहुंचा, जहां जेसीबी से खनन किया पत्थर जब्त किया गया. खनिज अधिकारी ने बताया कि जब्त माल की विधिवत नीलामी कर प्राप्त राशि शासकीय कोष में जमा करवा दी जाएगी. दबिश में कोई अवैध खननकर्ता नहीं पाया गया. इसलिए अज्ञात के खिलाफ मामला दर्ज किया गया है. यह कार्रवाई इस बात का जीता-जागता सबूत है कि छतरपुर जिले में व्यापक पैमाने पर खनिज संपदा का अवैध दोहन पूर्व में लम्बे अर्से से जारी है. इसके कारण राज्य सरकार को अरबों रुपए का नुक़सान पहुंचा है.

गौरतलब है कि मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने हाल ही में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से जिलाधिकारियों को अवैध खनन के ख़िलाफ कार्रवाई करने का आदेश दिया था. उन्होंने कहा था कि अवैध उत्खनन में लिप्त लोग चाहे कितने भी ऊंचे रसूख वाले हों, उनके ख़िलाफ नियमानुसार कठोर कार्रवाई की जाए. मुख्यमंत्री के आदेश के बाद जिला प्रशासन कार्रवाई करता दिख रहा है, लेकिन यह कई मायनों में नाकाफी है. छतरपुर और आसपास के क्षेत्रों में तो अब भी रेत का अवैध उत्खनन जारी है और रेत माफिया मध्य प्रदेश के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के कई जिलों तक भी अवैध तरीके से रेत पहुंचा रहे हैं. प्रशासनिक सख्ती को धत्ता बताते हुए रेत माफिया रोजाना सैकड़ों ट्रक रेत का अवैध उत्खनन कर रहे हैं. जिले के चंदला विधायक रेत के अवैध धंधे के मामले को राज्य विधानसभा और मुख्यमंत्री के समक्ष उठा चुके हैं. उन्होंने यह भी आरोप लगाया था कि जिले के पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी जिले के सक्रिय रेत माफियाओं से मिले हुए हैं. रेत माफियाओं से प्रतिमाह लाखों रुपए की धनराशि हासिल होने की वजह से सख्त कार्रवाई करने की बजाय इसकी अनदेखी की जाती रही है और प्रशासन इसे प्रश्रय देता रहा है. अनदेखी के सिलसिले पर अभी भी प्रभावी अंकुश नहीं लग सका है. हाल ही में छतरपुर और पन्ना जिले की सीमा में स्थित केन नदी से निकाले गए अवैध रेत से लदे तकरीबन 300 ट्रकों और डंपरों को पन्ना कलेक्टर के आदेश पर पुलिस, खनिज और राजस्व अधिकारियों ने जब्त किया. अभी भी केन नदी के विभिन्न घाटों से बड़े पैमाने पर रेत का अवैध उत्खनन परिवहन और बिक्री का सिलसिला जारी है. न सिर्फ केन नदी बल्कि जिले में स्थित तमाम नदियों से रेत का अवैध उत्खनन हो रहा है. ऐसी बातें भी सामने आई हैं कि सत्ताधारी पार्टी समेत विभिन्न दलों के कई नेता परोक्ष रूप से रेत के अवैध कारोबार में साझेदार हैं और इनका संरक्षण प्राप्त रेत कारोबारी प्रकृति का दोहन कर ही रहे हैं, अवैध उगाही भी कर रहे हैं. ■

feedback@chauthiduniya.com

सपा-कांग्रेस का बेमेल प्रेमः '27 साल यूपी बेहाल' के बाद 'यूपी को ये साथ पसंद है'

यूपी को ये साथ पसंद नहीं है

सपा-कांग्रेस गठबंधन के बृहत्तर हित जो भी हों, लेकिन जमीनी स्तर पर कई कोणीय चुनौतियां दोनों पार्टियों को झेलनी पड़ रही हैं. खास तौर पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई जिलों में दोनों दलों के नेता एक साथ और एक मंच पर आने से हिचक रहे हैं. एक दूसरे के खिलाफ ही वे राजनीति करते रहे, अब अचानक शीर्ष नेताओं के फैसले से उनकी राजनीति मुश्किल में आ खड़ी हुई है. कमोबेश पूरे उत्तर प्रदेश में ऐसी ही स्थिति है. 2013 में हुए मुजफ्फरनगर दंगे और तमाम साम्प्रदायिक तनाव की घटनाओं के लिए कांग्रेसी नेता सपा सरकार को ही दोषी ठहराते आए हैं. इसे लेकर कांग्रेस नेताओं की सपा नेताओं से कई बार झड़पें तक हो चुकी हैं. पूरे प्रदेश में कांग्रेस नेता राहुल गांधी की एक बुकलेट पर चर्चा हो रही है, जिसमें समाजवादी सरकार के कामकाज का पोस्टमॉर्टम किया हुआ है.

प्रभात रंजन दीन

चुनाव आया तो नारा आया, 'यूपी को ये साथ पसंद है'. पांच साल तो यूपी के लोग सुनते रहे, 'सपा को हाथ नापसंद है'... नापसंदगी से पसंदगी में सपा का परिवर्तन उसके मूल चारित्रिक बदलाव की सनद है. '27 साल यूपी बेहाल' के नारे से पुरसाहाल की तरफ लपकने वाली कांग्रेस के चरित्र के बारे में लोग पहले से जानते हैं. ऐसे दो चरित्रों का मेल-मिलाप न उत्तर प्रदेश के लोगों को समझ में आया और न सपा के निवर्तमान राष्ट्रीय अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव को. समाजवादी पार्टी और कांग्रेस पार्टी के नेता-कार्यकर्ता भी इस मौकापरस्त गठबंधन की गुत्थियां सुलझाने में लगे हैं. यह अवसरवाद दोनों पार्टियों के लिए जरूरी था. समाजवादी पार्टी अपने गहरे आंतरिक कलह के कारण जनाधार-नुकसान से आक्रांत थी तो कांग्रेस गहरे जमीनी-विलोप से. ऐसी स्थिति में कांग्रेस का समाजवादी पार्टी से जुड़ना या समाजवादी पार्टी का कांग्रेस से जुड़ना दोनों के लिए कितना फायदेमंद साबित होगा, यह कुछ दिनों में पता चल जाएगा. साथ ही यह चुनाव मतदाताओं की वैचारिक-परिपक्वता के बारे में भी बताएगा. लखनऊ के कुछ बुद्धिजीवियों ने कहा कि '27 साल यूपी बेहाल' के बाद 'यूपी को ये साथ पसंद है', यह नागरिक भावनाओं के साथ खुला मजाक है. राजनीतिक पार्टियों ने मतदाताओं को निरा बेवकूफ ही समझ रखा है. बुद्धिजीवियों ने कहा, 'यूपी को ये साथ पसंद नहीं है'.

सार्वजनिक सतह पर लड़े जा रहे समाजवादी पार्टी के परिवार-युद्ध से सबसे अधिक घबराहट या चिंता मुस्लिम मतदाताओं में थी. जो मुस्लिम मतदाता भाजपा के बरक्स सपा को ही कारगर प्रतिरोधी मानता था, वही पार्टी लचर दिखने लगी. ऐसे में उसे बहुजन समाज पार्टी (बसपा) का विकल्प दिखा और बड़ी तादाद में मुस्लिम मतदाताओं के बसपा की तरफ रुख कर लेने के संदेश और संकेत मिलने लगे. बसपा ने उत्तर प्रदेश के इस विधानसभा चुनाव में सर्वाधिक मुस्लिम प्रत्याशी खड़े किए. जबकि सपा ने बसपा की तुलना में आधा. बसपा नेता मायावती एक लंबे अर्से से लगातार दलित-मुस्लिम समीकरण दुरुस्त करने के एजेंडे पर काम कर रही थीं. इसका परिणाम यह हुआ कि समाजवादी पार्टी से मुस्लिम मतदाताओं का खिसकाव तेजी से बसपा की तरफ हुआ. कांग्रेस और समाजवादी पार्टी के साथ आने से मुस्लिम मतदाताओं का बिखरना रुकेगा, ऐसे तर्क दिए जा रहे हैं. लेकिन मुस्लिम मतदाताओं से आप बात करें तो पाएंगे कि मुस्लिम मतदाता अपना मत दो दलों में बंटता हुआ देखना नहीं चाह रहा. 2012 के चुनाव में मुस्लिम मतों का 39 प्रतिशत समाजवादी पार्टी को और 18 प्रतिशत कांग्रेस को मिला था. गठबंधन के बाद दोनों दल दोनों प्रतिशत को मिला कर देख रहे हैं और फूले नहीं समा रहे हैं. लेकिन सपा और कांग्रेस दोनों ही पार्टियां पिछले चुनाव में बसपा को मिले 20 प्रतिशत मुस्लिम वोट का प्रसंग याद नहीं कर रहीं. यह प्रतिशत और कितना बढ़ा है, यह तो चुनाव परिणाम आने पर ही पता चलेगा. लेकिन बसपा का मुस्लिम मत जिस तरह लगातार बढ़ा है, उससे कुछ राजनीतिक संकेत तो मिल ही रहे हैं. 2002 के विधानसभा चुनाव में बसपा को 9 प्रतिशत मुस्लिम वोट मिला था. यह 2007 के चुनाव में बढ़ कर 17 प्रतिशत और 2012 के चुनाव में 20 प्रतिशत पहुंच गया. इसके साथ ही बसपा को मिला 26 प्रतिशत दलित वोट भी जोड़ कर देखा जाना चाहिए. सपा-कांग्रेस गठबंधन भले ही ध्यान न दे, लेकिन उसके लिए यही चिंता का विषय है और यही चुनौती भी है.

कांग्रेस का भी मुस्लिम वोट प्रतिशत बढ़ा है. लेकिन उसकी राजनीतिक जमीन क्रमशः पोपली होती चली गई. इसका उसे अहसास भी है, इसीलिए उसने सपा से दोस्ती का हाथ भी बढ़ाया. कांग्रेस भाजपा को ही अपना मूल शत्रु मानती है. साथ ही वह यह भी अच्छी तरह समझती है कि अब वह अकेले दम पर भाजपा को नहीं हरा सकती. उसने बिहार में नीतीश-लालू के साथ गठबंधन बनाया और उसमें उसे सफलता हासिल हुई. उसी फार्मूले पर चलते हुए कांग्रेस ने यूपी में अखिलेश का साथ पकड़ा. अब कांग्रेस उत्तर प्रदेश में अपनी स्थिति मजबूत करती हुई 2019 के लोकसभा चुनाव में उतरना चाहती है. कांग्रेस राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा के अस्तित्व पर अन्य कई दलों से बातचीत कर रही है. इसमें बसपा से उसे परहेज नहीं है. यूपी में गठबंधन की घोषणा के बाद पहली साझा प्रेस कॉन्फ्रेंस में भी राहुल गांधी ने कहा कि बसपा नेता मायावती के प्रति उनके मन में अत्यंत सम्मान है. ऐसा राहुल गांधी ने 'ऐसे' नहीं बोल दिया था. राहुल की इस बोली पर अखिलेश असहज भी हुए थे. 2019 को लक्ष्य पर रखते हुए ही तृणमूल कांग्रेस की नेता व पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने उत्तर प्रदेश में अपना प्रत्याशी नहीं उतारा और जद (यू) नेता व बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने प्रत्याशी उतार कर भी उसे वापस ले लिया और उत्तर प्रदेश का मैदान छोड़ दिया.

सपा-कांग्रेस गठबंधन के बृहत्तर हित जो भी हों, लेकिन जमीनी स्तर पर कई कोणीय चुनौतियां दोनों पार्टियों को झेलनी पड़ रही हैं. खास तौर पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई जिलों में दोनों दलों के नेता एक साथ और एक मंच पर आने से हिचक रहे हैं. एक दूसरे के खिलाफ ही वे राजनीति करते रहे, अब अचानक शीर्ष नेताओं के फैसले से उनकी राजनीति मुश्किल में आ खड़ी हुई है. कमोबेश पूरे उत्तर प्रदेश में ऐसी ही स्थिति है. 2013 में हुए मुजफ्फरनगर दंगे और तमाम साम्प्रदायिक तनाव की घटनाओं के लिए कांग्रेसी नेता सपा सरकार को ही दोषी ठहराते आए हैं. इसे लेकर कांग्रेस नेताओं की सपा नेताओं से कई बार झड़पें तक हो चुकी हैं. पूरे प्रदेश में कांग्रेस नेता राहुल गांधी की एक बुकलेट पर चर्चा हो रही है, जिसमें समाजवादी सरकार के कामकाज का पोस्टमॉर्टम किया हुआ है. आप याद करें, किसान यात्रा के दौरान प्रदेशभर में बुकलेट बांटी गई थी, जिसमें सपा सरकार के कार्यकाल के तमाम निर्णयों और घटनाओं की धज्जियां उड़ाई गई थीं. अब गठबंधन की घोषणा के बाद लोग उसी बुकलेट के जरिए कांग्रेस-सपा के ताजा प्रस्फुटित प्रेम की धज्जियां उड़ा रहे हैं. एक बसपा नेता ने कहा कि इस गठबंधन को मुस्लिम इसलिए भी वोट नहीं देगा, क्योंकि मुसलमान बाबरी विध्वंस के लिए कांग्रेस को भी उतना ही दोषी मानते हैं. समाजवादी पार्टी भी प्रदेश के मुस्लिम मतदाताओं को अबतक यही पाठ पढ़ाती चली आ रही है. राजनीतिक समीक्षकों का मानना है कि सपा-कांग्रेस गठबंधन का बुंदेलखंड के कुछ विधानसभा क्षेत्रों में फायदा मिल सकता है. लेकिन व्यापक दायरे में वे इस गठबंधन को समाजवादी पार्टी के लिए घाटे का सौदा ही मानते हैं. समीक्षकों का कहना है कि अगर समाजवादी पार्टी ने समझदारी से काम नहीं लिया तो कांग्रेस उसका सहारा लेकर काफी अंदर तक पैठ बना सकती है. पहले कलह और अब गठबंधन से समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ताओं का मनोबल भी उतना ऊंचा नहीं रहा है. ■

यूपी में कुपोषण के ख़िलाफ़ कांग्रेस ने पोस्टर-युद्ध चलाया था

समाजवादी पार्टी के मुखिया अखिलेश यादव ने जिस कांग्रेस पार्टी के साथ दोस्ती की है, उसी कांग्रेस पार्टी ने उत्तर प्रदेश में फैले कुपोषण के मसले पर अखिलेश सरकार के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी थी. यूपी में कुपोषण के खिलाफ बाकायदा कांग्रेस का पोस्टर-युद्ध चल रहा था. सपा-कांग्रेस गठबंधन की जमीन कितनी खोखली है, इन बातों से समझा जा सकता है. कांग्रेस के पोस्टरों के जरिए 27 साल यूपी बेहाल के तहत यह कहा गया था कि उत्तर प्रदेश में हर दिन साढ़े छह सौ बच्चे कुपोषण के कारण मर जाते हैं. उत्तर प्रदेश में कुपोषण एक खौफनाक सच है. आधिकारिक रिपोर्ट भी यही कहती है कि उत्तर प्रदेश में हर रोज 650 बच्चों की मौत कुपोषण के कारण हो रही है. 70 प्रतिशत बच्चों का जन्म सरकारी अस्पतालों में होता है. इसके बावजूद न तो ब्रेस्ट फीडिंग को बढ़ावा मिल पा रहा है न माओं की सेहत ऐसी है कि वे अपने नवजात को स्वस्थ दुग्धपान करा सकें. 50 फीसदी से अधिक माताएं खून की कमी से जूझ रही हैं. ये आंकड़े जिला अस्पतालों और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों से जुटाए गए हैं. सरकारी आंकड़ों से अलग सामाजिक संगठनों के सर्वे बताते हैं कि तीन लाख से भी ज्यादा बच्चों की मौत हर साल कुपोषण से हो जाती है. प्रदेश में 12 लाख 60 हजार बच्चे अति कुपोषित हैं. आंकड़े बताते हैं कि हर 7वां बच्चा निर्धारित वजन से कम (अंडरवेट) है. आधे से ज्यादा बच्चों की लंबाई औसत से कम है. पांच साल की उम्र के चार में से तीन बच्चे खून की कमी (एनीमिक) के शिकार हैं. छह में से पांच माताएं बच्चों को छह महीने तक दूध पिलाने लायक नहीं हैं. इसके कारण बच्चों को पर्याप्त पोषण नहीं मिल पा रहा है. महिलाएं खुद रक्त-अल्पता (एनीमिया) का शिकार हैं. प्रसव के लिए सरकारी संस्थाओं में आने वाली महिलाओं में 50 प्रतिशत से अधिक महिलाओं में खून की कमी पाई जाती है. ऐसी माताओं के बच्चों में बुद्धि-विकास भी कम होता है. करीब 35 लाख बच्चे पौष्टिक आहार नहीं मिलने के कारण सूखा रोग से पीड़ित हैं.

उत्तर प्रदेश में कुपोषण का मसला सूचना के अधिकार के तहत भी आधिकारिक तौर पर उजागर हो चुका है. कुछ ही अर्सा पहले उर्वशी शर्मा को सूचना के अधिकार के तहत जो जानकारी मिली उससे साबित हुआ कि उत्तर प्रदेश को कुपोषण मुक्त बनाने के लिए प्रदेश सरकार द्वारा किए जा रहे दावे खोखले हैं. प्रदेश में राज्य पोषण मिशन के तहत जरूरतमंद लोगों तक पौष्टिक पदार्थ पहुंचाने के अखिलेश सरकार के दावे हकीकत से बिल्कुल विपरीत पाए गए थे. सामाजिक कार्यकर्ता उर्वशी शर्मा ने आरटीआई के तहत यह जानने की कोशिश की थी कि प्रदेश में कुपोषण के शिकार लोगों की संख्या कितनी है. प्रदेश के बाल विकास पुष्टाहार विभाग ने जो जवाब दिया है वह चौंकाने वाला था. सरकारी विभाग ने बताया कि मायावती का कार्यकाल रहा हो या अखिलेश सरकार का, प्रदेश सरकार ने कुपोषण के संबंध में कोई भी अध्ययन या सर्वेक्षण नहीं कराया, जिससे यह पता चल सके कि प्रदेश में कुपोषण के शिकार लोगों की संख्या कितनी है. उत्तर प्रदेश के बाल विकास सेवा एवं पुष्टाहार निदेशालय के पास कुपोषण की समस्या से ग्रसित पुरुषों, महिलाओं, किन्नरों, बालकों, बालिकाओं और शिशुओं की संख्या की कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं थी. सवाल उठना लाजिमी है कि आखिर किस आधार पर अखिलेश सरकार ने राज्य पोषण मिशन के शुभारंभ पर जरूरतमंद लोगों तक पौष्टिक पदार्थ पहुंचाने का दावा किया था? जब आंकड़े ही उपलब्ध नहीं हैं, तो इस मिशन से प्रदेश की एक लाख महिलाओं को जोड़े जाने का दावा कैसे किया गया? उल्लेखनीय है कि अखिलेश यादव ने भारी सरकारी तामझाम के साथ बाल विकास पुष्टाहार मंत्री की मौजूदगी में प्रदेश में कुपोषण के खिलाफ राज्य पोषण मिशन का शुभारंभ किया था. तब अखिलेश ने कहा था कि राज्य पोषण मिशन के तहत उनका लक्ष्य जरूरतमंद लोगों तक पौष्टिक पदार्थ पहुंचाना और इस मिशन से सूबे की एक लाख महिलाओं को जोड़ना है. इस तरह के दावे और उस पर उठ रहे तमाम सवाल पूरी तरह अनुत्तरित हैं. कांग्रेस भी इन सवालों का जवाब मांग रही थी, लेकिन चुनाव आते ही कांग्रेस उन जवाबों की तलाश छोड़, अखिलेश के साथ हाथ मिला कर सत्ता जुगाड़ में मशगूल हो गई. जनता से असलियत में जुड़े मुद्दे इस सियासी चकाचौंध में गुल हो गए. ■

feedback@chauthiduniya.com

www.kamalmorarka.com

कमल मोरारका

लोकतंत्र के रास्ते में अवरोध पैदा करना ग़लत है

मेरे हिसाब से अगर अभी भी भाजपा नए मानदंड स्थापित करना चाहती है, तो इसे राज्यों के विधान सभा चुनावों के बारे में चिंता नहीं करनी चाहिए. जीतने दीजिए, जो जीत रहा है, या फिर जो हार रहा है. मानकों को बनाए रखिए. आप क्यों तमिलनाडु में हस्तक्षेप कर रहे हैं? क्यों गवर्नर को बोल रहे हैं कि शशिकला को शपथ न दिलाएं? उन्हें सीएम बनने दीजिए. वह इतनी लोकप्रिय नहीं हैं. पार्टी उन्हें एक समय के बाद हटा देगी. लोकतंत्र को अपना काम खुद करने दीजिए. लोकतंत्र के रास्ते में अवरोध पैदा करना तो गलत है. इंदिरा गांधी ने यही काम आपातकाल के समय किया. लोगों ने उन्हें हटा दिया. एक व्यक्ति चाहे कितना लोकप्रिय क्यों न हो, वह सब के लिए नहीं बोल सकता, सब काम नहीं कर सकता. दुर्भाग्य से भाजपा अघोषित आपातकाल थोपने की कोशिश कर रही है.

जयललिता की मृत्यु के बाद शशिकला को एआईएडीएमके ने अपना नेता चुन लिया है. यह पार्टी का आंतरिक मामला है कि वे किसे अपना नेता चुनते हैं. विधायक दल का नेता चुने जाने के बाद भी गवर्नर का उनके शपथग्रहण में विलंब करना गवर्नर के अधिकार क्षेत्र से बाहर का मामला है. यह हकीकत है कि गवर्नर को भाजपा सरकार ने नियुक्त किया है और वे एक साथ महाराष्ट्र और तमिलनाडु के गवर्नर हैं. दरअसल लोकतांत्रिक प्रक्रिया में जानबूझ कर देरी कर वे संविधान के विरुद्ध काम कर रहे हैं. उसी तरह चुनाव आयोग पर भी दबाव डाला जा रहा है. आयोग ने एक हास्यास्पद बयान जारी किया है कि शशिकला को पार्टी का महासचिव नहीं चुना जा सकता है. किसी पार्टी के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना चुनाव आयोग के अधिकार क्षेत्र से बाहर है.

बहरहाल शशिकला को विधायक दल का नेता चुना गया है, इसमें कोई विवाद नहीं है. यहां तक कि चुनाव आयोग को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं है, तो फिर विलंब क्यों? शशिकला को बिना किसी अतिरिक्त विलंब के तुरंत मुख्यमंत्री पद का शपथ दिलाया जाना चाहिए. यह एक हास्यास्पद बहाना है कि सुप्रीम कोर्ट में इस संबंध में एक जनहित याचिका लंबित है, इसलिए गवर्नर कानूनी सलाह ले रहे हैं. राज्यपाल का पक्ष तर्कसंगत नहीं है. वे दूसरे रामलाल बन गए हैं. यदि भाजपा ऐसे लोगों को नियुक्त करेगी, जो अपने संवैधानिक विवेक का इस्तेमाल नहीं कर सकते, तो भाजपा को इसका खामियाजा भुगतना पड़ सकता है. यह बहुत ही दुखद स्थिति है.

उत्तर प्रदेश चुनाव प्रचार जारी है. यहां सात चरणों में चुनाव होने हैं. चुनाव दरअसल हर पांच साल में होते हैं, इसमें कुछ भी नया नहीं है. लेकिन इसका दुखद पक्ष यह है कि न सिर्फ क्षेत्रीय, बल्कि राष्ट्रीय दलों (खास तौर पर भाजपा जो केंद्र में सत्ता में है,) ने भी निम्न स्तर की भाषा का प्रयोग कर चुनाव प्रचार के स्तर को गिरा दिया है. विनय कटियार और योगी आदित्यनाथ की कौन कहे, भाजपा अध्यक्ष अमित शाह और खुद प्रधानमंत्री ऐसी भाषा का प्रयोग कर रहे हैं, जो प्रधानमंत्री के गरिमापूर्ण पद के लिए ठीक नहीं है. यह भाषा लोकतंत्र में शोभा नहीं देती, किसी शिक्षित व प्रबुद्ध समाज को शोभा नहीं देती. यहां तक कि यह भाजपा की परम्परा से भी मेल नहीं खाती है. भाजपा पहले विपक्ष में रही है और बहुत ही जोशोखरोश और ताक़त के साथ चुनाव प्रचार किया है. अटलबिहारी वाजपेयी, एलके आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, नानाजी देशमुख, सुन्दर सिंह भंडारी आदि की भाषा को देखें, तो वे कांग्रेस की आलोचना में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते थे, लेकिन उनकी भाषा शालीन होती थी. नरेंद्र मोदी की तरह तो बिल्कुल ही नहीं थी. फिलहाल वे सत्ता में हैं, जिसके कारण उनकी भाषा संयमित और शालीन होनी चाहिए थी. विपक्ष में रहते हुए कोई असंतुष्ट हो सकता है. वो 282 सदस्यों के पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में हैं. वो जैसे चाहें, सरकार चला सकते हैं तो फिर असुरक्षा की भावना क्यों? वो इतने परेशान क्यों हैं? यह एक आम राजनीतिक विवेचक को हैरान करता है. वो यह नहीं समझ पाता कि वास्तव में क्या हो रहा है?

चुनाव के लिए सबको तैयार रहना चाहिए. कोई हारेगा, कोई जीतेगा. कोई कम अंतर से जीतेगा, कोई बड़े अंतर से जीतेगा. कोई कम अंतर से हारेगा, कोई बड़े अंतर से हारेगा. लेकिन यह संयम खोने वाली बात नहीं है. मेरे हिसाब से प्रधानमंत्री को खुद ही इस खामी को ठीक करनी होगी. लेकिन यदि वे खुद इस खामी का हिस्सा हैं, तो वे उसे कैसे दूर करेंगे? उन्हें तुरन्त अपनी भाषा को संयमित करना चाहिए, जिसका पालन पार्टी के दूसरे लोग भी करेंगे. अगर उत्तर प्रदेश में चुनाव हार भी जाते हैं, तो उन्हें इसका फर्क नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि उसके बाद भी देश की सत्ता कम से कम दो साल तक उन्हीं के हाथों में रहेगी. लेकिन यदि आप बहस और संवाद के स्तर को नीचे गिराएंगे, तो आपको ऐसे व्यक्ति के रूप में चिन्हित किया जाएगा, जिसने चुनाव प्रचार में भाषा के स्तर में गिरावट की शुरुआत की.

वर्ष 2014 के चुनाव प्रचार में मोदी का कांग्रेस मुक्त भारत की बात करना ही आपत्तिजनक था. कांग्रेस मुक्त सरकार कहना ठीक है, लेकिन कांग्रेस मुक्त भारत! इसका मतलब क्या है? क्या आप चाहते हैं कि कांग्रेस देश से चली जाए? क्या आप चाहते हैं कि पार्टी समाप्त हो जाए? क्या आप एक दलीय प्रणाली वाला लोकतंत्र चाहते हैं? ये लोकतांत्रिक कथन नहीं है. ऐसे बयान से तानाशाही एवं राजशाही की बू आती है और लोकतंत्र में ऐसी चीज़ें अराजकता की तरफ ले जाती हैं. पहले ही उनकी चमक समाप्त हो गई है. दिल्ली और बिहार में वे बुरी तरह से हारे हैं. यदि उनका निष्कर्ष यह था कि जनता ने कांग्रेस को हमेशा के लिए बाहर का रास्ता दिखा दिया है, तो यह एक गलत निष्कर्ष है. मेरे विचार से ये सारी चीज़ें उसी गलत निष्कर्ष की वजह से हो रही हैं.

कोई कभी हारता है, कभी जीतता है. 2014 में भाजपा ने कुल 31 प्रतिशत वोट हासिल किया था. तो यह सोचना कि पूरा देश उनके साथ है और कांग्रेस हमेशा के लिए हार गई है, गलत है. यह बिल्कुल सही है कि कांग्रेस बुरी तरह से हारी है, लेकिन उन्हें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि लोगों ने कांग्रेस के शासन काल में जो आदर्श थे, उसे छोड़ कर संघ के दृष्टिकोण को अपना लिया है. ऐसा बिल्कुल नहीं है. निस्संदेह उन्होंने बीफ बैन किया, मोरल पुलिसिंग की हौसला अफजाई की और सेंसर बोर्ड में संघ के लोगों की नियुक्ति की. लेकिन उन्हें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचना चाहिए कि देश का बहुमत या देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा उनके दृष्टिकोण को अपनाएगा. उत्तर प्रदेश चुनाव में उन्हें ये पता चल जाएगा. विनय कटियार और योगी, इस तरह की जितनी अधिक बातें करेंगे, उन्हें उतना ही अधिक नुकसान होगा. लेकिन मैं वो बात नहीं कर रहा हूं. यह उनके पार्टी का मामला है. प्रधानमंत्री के रूप में नरेंद्र मोदी और भाजपा अध्यक्ष के रूप में अमित शाह को अपनी भाषा पर नियंत्रण रखना चाहिए. कांग्रेस की सख्त आलोचना कीजिए. मैं किसी की तरफ से बात नहीं कर रहा हूं, लेकिन भाषा का स्तर नीचे नहीं होना चाहिए.

भाजपा कहती है कि हम पार्टी विद डिफरेंस हैं. कांग्रेस सत्ता की लालची है, क्योंकि उसे पैसा कमाना है. हमलोग एक नए तरह का शासन देंगे. न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन. पिछले तीन साल में क्या हुआ? उन्होंने सिर्फ कांग्रेस की नकल की है. कांग्रेस के फ्लैगशिप प्रोग्राम जैसे मनरेगा और आधार को आगे बढ़ा रहे हैं. इसके बाद भी ये लोग कांग्रेस को कोसते हैं. कश्मीर में इन्होंने किस सिद्धांत के आधार पर मुफ्ती के साथ मिल कर सरकार बनाई? वहां राष्ट्रपति शासन रहने देते, लेकिन नहीं. वे भी सत्ता के लिए उतने ही उतावले हैं, जितना कि कांग्रेस या कहें कि उससे भी कहीं अधिक. उत्तराखंड में आपने क्या किया? वहां आपने कांग्रेस से दस आदमी लिए और उन्हें टिकट दे दिया. अपनी ही पार्टी में असंतोष भर दिया. यह काम तो कांग्रेस करती रही है. दूसरे शब्दों में कहें, तो भाजपा अपने काम से ये साबित कर रही है कि कांग्रेस इस देश को ठीक से चला रही थी और वे ये काम ठीक से नहीं कर रहे हैं. लेकिन, पार्टी विद डिफरेंस का दावा कहां गया? आज मोदी और शाह जिस तरह से उत्तर प्रदेश में बोल रहे हैं, उससे लग रहा है कि वहां भाजपा की स्थिति काफी कमजोर हो चुकी है. यही कारण है कि खराब और अमर्यादित शब्दों का इस्तेमाल हो रहा है. मेरे हिसाब से अगर अभी भी भाजपा नए मानदंड स्थापित करना चाहती है, तो इसे राज्यों के विधान सभा चुनावों के बारे में चिंता नहीं करनी चाहिए. जीतने दीजिए, जो जीत रहा है, या फिर जो हार रहा है. मानकों को बनाए रखिए. आप क्यों तमिलनाडु में हस्तक्षेप कर रहे हैं? क्यों गवर्नर को बोल रहे हैं कि शशिकला को शपथ न दिलाएं? उन्हें सीएम बनने दीजिए. वह इतनी लोकप्रिय नहीं हैं. पार्टी उन्हें एक समय के बाद हटा देगी. लोकतंत्र को अपना काम खुद करने दीजिए. लोकतंत्र के रास्ते में अवरोध पैदा करना तो गलत है. इंदिरा गांधी ने यही काम आपातकाल के समय किया. लोगों ने उन्हें हटा दिया. एक व्यक्ति चाहे कितना लोकप्रिय क्यों न हो, वह सब के लिए नहीं बोल सकता, सब काम नहीं कर सकता. दुर्भाग्य से भाजपा अघोषित आपातकाल थोपने की कोशिश कर रही है. लोकतंत्र में सबके लिए स्कोप होना चाहिए. निश्चित तौर पर भाजपा चुनाव लड़ना चाहती है, केंद्र में शासन करना चाहती है, करना भी चाहिए, लेकिन लोकतांत्रिक सीमा और संवैधानिक मूल्यों के भीतर. देखते हैं, क्या होता है? ■

feedback@chauthiduniya.com

> भाजपा कहती है कि हम पार्टी विद डिफरेंस हैं. कांग्रेस सत्ता की लालची है, क्योंकि उसे पैसा कमाना है. हमलोग एक नए तरह का शासन देंगे. न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन. पिछले तीन साल में क्या हुआ? उन्होंने सिर्फ कांग्रेस की नकल की है. कांग्रेस के फ्लैगशिप प्रोग्राम जैसे मनरेगा और आधार को आगे बढ़ा रहे हैं. इसके बाद भी ये लोग कांग्रेस को कोसते हैं. कश्मीर में इन्होंने किस सिद्धांत के आधार पर मुफ्ती के साथ मिल कर सरकार बनाई? वहां राष्ट्रपति शासन रहने देते, लेकिन नहीं.

> चुनाव के लिए सबको तैयार रहना चाहिए. कोई हारेगा, कोई जीतेगा. कोई कम अंतर से जीतेगा, कोई बड़े अंतर से जीतेगा. कोई कम अंतर से हारेगा, कोई बड़े अंतर से हारेगा. लेकिन यह संयम खोने वाली बात नहीं है. मेरे हिसाब से प्रधानमंत्री को खुद इस खामी को ठीक करनी होगी. लेकिन यदि वे खुद ही इस खामी का हिस्सा हैं, तो वे उसे कैसे दूर करेंगे? उन्हें तुरन्त अपनी भाषा को संयमित करना चाहिए, जिसका पालन पार्टी के दूसरे लोग भी करेंगे.

जम्मू-कश्मीर के प्रस्तावों की अनोखी कहानी

शुजात बुख़ारी

भारत में जन प्रतिनिधियों के किसी भी सदन की तरह, जम्मू-कश्मीर विधानसभा और जम्मू-कश्मीर विधान परिषद किसी मुद्दे को उजागर करने के लिए प्रस्ताव पारित करते हैं, ताकि उनका तुरंत समाधान निकाला जा सके. इन दोनों सदनों ने कुछ ऐसे विधेयक और प्रस्ताव पारित किये हैं, जो राजनीतिक रूप से संवेदनशील और ध्यान आकर्षित करने वाले थे. लेकिन अधिकतर प्रस्तावों को न तो राज्य सरकार ने और न ही भारत सरकार ने गंभीरता से लिया. शेख अब्दुल्ला सरकार द्वारा सदन के पटल पर लाया गया बिल संख्या 7 या जम्मू-कश्मीर रिसेटेलमेंट बिल 1977 इसकी मिसाल है. यह बिल वर्ष 1954 तक राज्य से पलायन कर गए नागरिकों की वापसी के लिए लाया गया था. इस बिल को विधानसभा के बाद सुप्रीम कोर्ट भेज दिया गया, जो फिर राज्य सरकार के पास वापस चला आया है. अभी भी यह बिल अधर में लटका हुआ है.

एक अन्य मामले में विधानसभा ने राज्य में अधिक स्वायत्तता की बहाली के लिए वर्ष 2000 में दो-तिहाई बहुमत के साथ एक प्रस्ताव पारित किया था. यह कश्मीर के तीनों क्षेत्रों कश्मीर, जम्मू और लद्दाख के लोगों की भावनाओं को परिलक्षित करता था, क्योंकि विधानसभा में सत्तारूढ़ नेशनल कांफ्रेंस (एनसी) का प्रतिनिधित्व इन तीन क्षेत्रों से ठीक ठाक था. यह प्रस्ताव 1995 में नरसिम्हा राव द्वारा फारूक अब्दुल्ला से किए गए वादे की बुनियाद पर पारित किया गया था. फारूक अब्दुल्ला ने मई 1996 के आम चुनाव का बहिस्कार किया था, लेकिन केंद्र सरकार ने स्वायत्तता के वादे पर उन्हें सितंबर 1996 के विधानसभा चुनाव में हिस्सा लेने के लिए राज़ी कर लिया था. तत्कालीन प्रधानमंत्री देवगौड़ा, जिन्हें वाम दल समर्थन दे रहे थे, ने फारूक अब्दुल्ला को सहयोग का आश्वासन दिया, लेकिन जब तक प्रस्ताव तैयार होता, उनकी सरकार चली गई. इसके बाद दिल्ली की बागडोर भाजपा के 'उदारवादी नेता' अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों में आ गई. फिर जब प्रस्ताव पारित हुआ तो वाजपेयी सरकार ने उसका नोटिस तक नहीं लिया. नई दिल्ली जिस आवाज़ को दुनिया भर में चुनी हुई विधानसभा के रूप में प्रचारित करती थी, उसी आवाज़ को बदनाम किया गया और फारूक अब्दुल्ला उसको चुनौती भी नहीं दे सके. साथ ही नेशनल कांफ्रेंस अब जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी बने रहने में विफल रही, क्योंकि इस दौरान वह वाजपेयी सरकार का हिस्सा बनी रही. लिहाज़ा विधानसभा द्वारा पारित प्रस्ताव हमेशा के लिए दफन हो गया.

हाल ही में विधानसभा ने कश्मीरी पंडितों की घाटी में वापसी से संबंधित एक प्रस्ताव पारित किया है. यह प्रस्ताव एनसी नेता उमर अब्दुल्ला द्वारा पेश किया गया था. प्रस्ताव का मुख्य बिन्दु कश्मीरी पंडितों की वापसी के लिए राजनीतिक व्यवस्था की सामूहिक इच्छा का प्रदर्शन करना था. पंडितों के पुनर्वास पर लाखों खर्च किए जा चुके हैं और उनका विश्वास हासिल करने के लिए कॉलोनियां भी बनाई गई हैं.

इसी तरह वर्ष 2004 में विधान परिषद् ने 14 वीं सदी के सूफी संत शेख नूरुद्दीन वली, जो शैखुल आलम के नाम से मशहूर हैं, के नाम पर श्रीनगर अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे का नाम रखने का प्रस्ताव पारित किया था. वे बडगाम के चरार-ए-शरीफ में दफन हैं, जो एयरपोर्ट के नज़दीक है. इस प्रस्ताव को भी भारत सरकार ने अस्वीकार कर दिया था. भारत में दर्जनों एयरपोर्ट हैं जो मशहूर हस्तियों के नाम पर हैं, लेकिन इस मामले में यह तर्क दिया गया कि सरकार अब ऐसे अनुरोधों का अनुपालन नहीं करती. चिनाब घाटी में पर्वतीय विकास परिषद बनाने संबन्धित एक प्रस्ताव लंबित है. गौरतलब है कि इसी तरह के परिषद लेह और कारगिल में कार्य कर रहे हैं.

एक और प्रस्ताव जिसे हाल ही में विधान परिषद ने पारित किया है, जिसपर अब यह बहस शुरू हो गई है कि सत्तारूढ़ गठबंधन को इसे पेश करने की अनुमति देनी भी चाहिए थी या नहीं? इसमें जम्मू-कश्मीर के अंतिम राजा, महाराजा हरि सिंह, की पुण्यतिथि पर छुट्टी की बात की गई है. यह प्रस्ताव राजा हरि सिंह के पोते अजातशत्रु सिंह द्वारा लाया गया था. इस प्रस्ताव ने डोगरा वंश के 100 साल के लंबे अत्याचारी शासन के दौरान लगे घाव को ताज़ा कर दिया है. राज्य की आबादी की बहुमत ने डोगरा राजतंत्र के खिलाफ लोकतंत्र के पक्ष में संघर्ष किया है. यह संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समानांतर चला था. (नेशनल कांफ्रेंस और पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी दोनों क्षेत्रीय दलों ने चुनावी जंग में जम्मू क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए राजवंश के वंशजों को अपने साथ रखा.)

जिस तरह से वो प्रस्ताव पारित किया गया, वह ज़ाहिर करता है कि सरकार की कार्यप्रणाली क्या है? हालांकि पीडीपी के विधायक खुर्शीद आलम ने अकेले इसका विरोध किया और एनसी इस दौरान अनुपस्थित रही. पीडीपी के नेता और शिक्षा मंत्री नईम अख्तर ने इस प्रस्ताव को वापस लेने की अपील की, लेकिन बिना किसी परेशानी के यह प्रस्ताव पारित हो गया. दरअसल अख्तर ने ही बहस के रुख को भी बदला. महाराजा की तारीफों के पुल बांधते हुए उन्होंने कहा, 500 से अधिक रियासतों ने भारतीय संघ में विलय कर लिया था, लेकिन यह महाराजा हरि सिंह ही थे, जिन्होंने राज्य के विशेष दर्जे की रक्षा की थी. नईम अख्तर ने कहा आप दो दशक पीछे जाइए, राज्य विषय के कानून जिसमें जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था के मर्म की रक्षा का प्रावधान है, वो महाराजा का महत्वपूर्ण योगदान है. वह आगे कहते हैं, जम्मू-कश्मीर के इतिहास और भूगोल पर नज़र डालें, उन परिस्थितियों पर नज़र डालें जिनके तहत इसका क्षेत्रीय विस्तार हुआ... क्या उन्होंने दुनिया के सबसे कठिन राज्य का निर्माण नहीं किया था?

इस तरह के संवेदनशील मुद्दे पर पीडीपी को सावधानी बरतनी चाहिए थी. निरंकुश राजतंत्र के अत्याचार के घाव के सवाल पर उसे आत्मसंतुष्ट नहीं होना चाहिए, भले ही भारतीय जनता पार्टी के साथ उसकी साझेदारी में दरार पैदा हो जाए. अगर पीडीपी या एनसी सत्ता में आते हैं, तो डोगरा शासन के खिलाफ संघर्ष में लोगों की कुर्बानियों की वजह से ही. पीडीपी को यह स्पष्ट करना होगा कि उसने उस प्रस्ताव को रोका क्यों नहीं, जिसकी वजह से दसियों हजार लोग आहत हुए.

विडंबना यह है कि हरि सिंह के बारे में उनके बेटे कर्ण सिंह कहते हैं कि वे सांप्रदायिक नहीं थे, हालांकि दुनिया जानती है कि डोगरा वंश ने अपने मुस्लिम प्रजा के साथ कैसा व्यवहार किया. यह तथ्य कि हरि सिंह के शासन के अंतिम दिनों में जम्मू के मुसलमानों का कत्लेआम हुआ था, 28 जनवरी के डॉ कर्ण सिंह की इस घोषणा को झुठलाने के लिए काफी है. करण सिंह ने कहा था कि हरि सिंह के सबसे करीबी दोस्त मुसलमान थे और उनके स्टाफ में हमेशा मुसलमान काफी संख्या में रहे. उन्हें सांप्रदायिक कहना एक दम गलत है. वह एक प्रगतिशील शासक थे और कई सुधार के काम किए थे. यदि चंद मुसलमानों से दोस्ती किसी को धर्मनिरपेक्ष बना देती, तो किसी को भी सांप्रदायिक नहीं कहा जा सकता है. अपनी किताब कश्मीर- द अनटोल्ड स्टोरी में ऑस्ट्रेलियाई लेखक क्रिस्टोफर सनेडेन ने राजा हरी सिंह के आखिरी दिनों में मुसलमानों के नरसंहार पर विस्तार से रौशनी डाली है. उनके अनुसार, कबाइली हमले से पहले लगभग 22,000 मुसलमान मारे गए थे, इससे ज़ाहिर होता है कि विनाश की कहानी बहुत पहले शुरू हो चुकी थी. टाइम्स ऑफ इंडिया के संवाददाता के अनुसार, वहां के मुसलमानों की 4,11,000 की आबादी में से 2,37,000 मुसलमानों को व्यवस्थित रूप से उनकी जड़ों से उखाड़ फेंका गया. यह बातें उसने 10 अगस्त 1948 को लिखी थी. करण सिंह के सेक्युलर थ्योरी को ध्वस्त करने के लिए ऐसे सैकड़ों उदहारण पेश किए जा सकते हैं.

सरकार को इस तरह की आग भड़काने से परहेज़ करना चाहिए. हरि सिंह अब अतीत बन चुके हैं, उन्हें वर्तमान या भविष्य में प्रासंगिक नहीं बनाया जा सकता है. वह भी उस वक़्त जब ऐसे लोगों की समझ पर सवाल खड़ा किया गया, जो महाराजा के खिलाफ खड़े हुए और उन्हें कश्मीर छोड़ने पर मजबूर किया. ■

-लेखक राइजिंग कश्मीर के संपादक हैं.

feedback@chauthiduniya.com

> विडंबना यह है कि हरि सिंह के बारे में उनके बेटे कर्ण सिंह कहते हैं कि वे सांप्रदायिक नहीं थे, हालांकि दुनिया जानती है कि डोगरा वंश ने अपने मुस्लिम प्रजा के साथ कैसा व्यवहार किया. यह तथ्य कि हरि सिंह के शासन के अंतिम दिनों में जम्मू के मुसलमानों का कत्लेआम हुआ था, 28 जनवरी के डॉ कर्ण सिंह की इस घोषणा को झुठलाने के लिए काफी है. करण सिंह ने कहा था कि हरि सिंह के सबसे करीबी दोस्त मुसलमान थे और उनके स्टाफ में हमेशा मुसलमान काफ़ी संख्या में रहे. उन्हें सांप्रदायिक कहना एक दम गलत है. वह एक प्रगतिशील शासक थे और कई सुधार के काम किए थे.

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

हमारी विदेश नीति-अर्थ नीति की विश्वसनीयता ख़तरे में है

नेपाल हमारा वर्षों से मित्र रहा है. हज़ारों साल या जब से ये दोनों देश अस्तित्व में आए, हम नेपाल को छोटा भाई मानकर उसके प्रति स्नेह जताते रहे हैं, लेकिन भारत की तरफ़ से कुछ ऐसी ग़लतियां हुईं, जिसने नेपाल के लोगों के मन में भारत के प्रति विद्वेष भर दिया. हमारे देश के नेताओं ने, जिनमें डॉ. राममनोहर लोहिया, लोकनायक जयप्रकाश प्रमुख थे, उन्होंने नेपाल राजशाही के खिलाफ़ चल रहे सशस्त्र आन्दोलन में नेपाली कांग्रेस की भरपूर मदद की. हालांकि उस समय की सरकारें राजशाही के खिलाफ चल रहे आंदोलन में तटस्थ रहीं, पर भारत के इन दो बड़े नेताओं ने बड़े पैमाने पर नेपाल की राजशाही के खिलाफ मुक्ति में मदद की. नेपाल में लोकतंत्र आया, लेकिन उसके बाद से ही हमसे वैसी ही ग़लतियां शुरू हुईं, जैसी हमने बांग्लादेश में कीं. नेपाल के लोग हमारी नीतियों की वजह से हमसे दूर होने लगे, लेकिन ये दूरी जितनी पिछले तीन साल में बढ़ी है, उसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं है.

नेपाल में भूकंप आया. हमने नेपाल की भरपूर मदद की, लेकिन हमारी मदद करने का तरीक़ा और हमारे यहां के भ्रष्टाचार ने नेपाल के लोगों को बुरी तरह से आहत किया. उस समय पूरे नेपाल में भारत विरोधी माहौल बना. उन्हें लगा कि हम उन्हें सहायता नहीं, भीख दे रहे हैं. अंत में नेपाल सरकार ने भारत की सहायता एजेंसियों और भारत सरकार को नेपाल में काम करने से रोकने का एक तरह से आदेश दे दिया. नेपाल में चीन ने उस समय बहुत मदद की और ये सब हमारी आंख के आगे हुआ. हमारी सरकार, हमारा विदेश मंत्रालय इस मामले में कुछ नहीं कर पाया, बल्कि उन्होंने भारत के लोगों के पास नेपाल में चल रहे मानसिक विद्रोह को पहुंचने ही नहीं दिया.

मोदी जी ने प्रधानमंत्री बनते ही सारी दुनिया में घूमना शुरू किया और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार की सलाह से उन्होंने विदेश नीति का एक नया नक्शा बना लिया. मुझे नहीं पता कि इस नक्शे को बनाने में विदेश मंत्रालय के विशेषज्ञों का कोई हिस्सा था या नहीं, पर यह कहा जा सकता है कि वो नक्शा सरकार का था क्योंकि प्रधानमंत्री मोदी उस पर अमल कर रहे थे. प्रधानमंत्री मोदी ने अपने प्रधानमंत्री पद के शपथग्रहण समारोह में सबसे पहले सार्क देशों के राष्ट्राध्यक्षों को आमंत्रित किया और लगभग सभी आए, आज पाकिस्तान के साथ हमारा क्या रिश्ता है, हम सबको मालूम है. इस समय हमारी सबसे ज्यादा दुश्मनी पाकिस्तान के साथ है और यह परंपरागत दुश्मनी से भी आगे बढ़ गई है. दूसरी तरफ़ प्रधानमंत्री मोदी ने चीन को घेरने की कोशिश की. उन्होंने बहुत तेज़ी के साथ मंगोलिया को एक बिलियन डॉलर की सीधी क्रेडिट लाइन देकर चीन को घेरने की शुरुआत की. शायद मोदी जी को लग रहा था कि वे मंगोलिया को चीन से अलग कर उसे परेशान कर लेंगे, लेकिन इसी दौरान चीन धीरे-धीरे नेपाल का सबसे बड़ा निवेशक बन रहा था.

इस साल की पहली छमाही में नेपाल के निवेश में अकेले चीन का हिस्सा 68 प्रतिशत है. उसके सामने कोई टक्कर नहीं है और मंगोलिया मोदी जी के वादे में आ गया. कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि मोदी जी वादे कर देते हैं और बाद में उन्हें भूल जाते हैं. मंगोलिया के साथ भी मोदी जी का किया वादा पूरा नहीं हुआ. इसके पहले मंगोलिया दलाईलामा को न्यौता देकर चीन से आमने-सामने की लड़ाई में आ चुका था. उसे लगा कि भारत के महाबली प्रधानमंत्री जब उनके साथ हैं, तो फिर डर किस बात का.

चीन ने मंगोलिया के साथ अपनी सीमा बंद कर दी, व्यापार और मदद भी बंद कर दी. दूसरी तरफ़ महाशक्तिशाली भारत के महाबली प्रधानमंत्री की तरफ से मंगोलिया को कोई मदद नहीं पहुंची. मंगोलिया परेशान हो गया. उसने चीन से माफ़ी मांगी और वादा किया कि वो दलाईलामा को कभी भी मंगोलिया नहीं आने देगा.

अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में हमारी विश्वसनीयता की स्थिति बहुत मज़ेदार है. चीन ने नेपाल को लगभग अपने साथ कर लिया है, जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है कि चीन, नेपाल के साथ भारत से अलग सैन्य अभ्यास करने वाला पहला सहयोगी देश बन रहा है. अब अगर चीन, नेपाल के साथ युद्धाभ्यास करेगा, सैनिक सहायता देना शुरू करेगा, तब हमारे पड़ोसियों में हमारे साथ कौन रहेगा? यह विदेश मंत्रालय को अभी समझ में नहीं आया है या शायद विदेश मंत्रालय यह समझ नहीं पा रहा है कि पड़ोसी का मतलब क्या होता है.

दूसरी तरफ़ भारत में औद्योगिक विकास की दर 6.5 प्रतिशत रहने वाली है. प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री से यह अपेक्षा थी कि वे यह बताएंगे कि उन्होंने आर्थिक मोर्चे पर नोटबंदी कर किन उद्देश्यों को हासिल किया. किसी भी देश के विकास का पैमाना उसकी औद्योगिक विकास की गति है, रोज़गार है. शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क यानी इंफ्रास्ट्रक्चर ये सब बढ़ें, ये सब उसके हिस्से हैं, लेकिन इन सबको प्राप्त करने के लिए अभी हमें और 6 साल इंतज़ार करना पड़ेगा, ऐसा सरकार का कहना है. यानी अगर हमें ये चीजें चाहिए तो 2019 में भी नरेन्द्र मोदी को चुनना देश की मजबूरी हो जाएगी. भारत सरकार देश की जनता को ये नहीं बता पा रही है कि उसके विकास का रोडमैप क्या है? विकास हो रहा है या विकास की गाड़ी चल रही है, तो कितने क़दम चली, इसके पैमाने क्या हैं? ऐसा लगता है जैसे पूरा देश बंद बक्से में बैठा है और देश व उस बक्से में बंद लोगों को बाहर से आवाज़ दी जा रही है कि बक्सा चल रहा है, बक्सा चल रहा है. नौकरियां ख़त्म हुईं, विकास दर और उत्पादन कम हुआ. मेक इन इंडिया में लोग नहीं आए, विदेशी निवेश नहीं आया और जिस ब्लैक मनी की बात सरकार कर रही है, वो ब्लैक मनी का छोटा हिस्सा ही है, बाक़ी पैसा तो बैंकों में आया ही, जो इस देश के 100 करोड़ लोगों ने अपनी वक़्त, ज़रूरत की परेशानियों से बचने के लिए अपने घरों में रखा था. यह हमारे देश की हज़ारों साल पुरानी परिपाटी है.

अब सरकार कह रही है कि हम कैशलेस या लेसकैश होना चाहते हैं. लोग मोबाइल के ज़रिये सारे आर्थिक

> **हमारे देश की कैशलैस व्यवस्था की 40 प्रतिशत सीधी हिस्सेदारी अब चीन के पास पहुंच गई है, क्योंकि भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के अधिकारियों की मिलीभगत से या उनके षड्यंत्र से चीन की अलीबाबा नामक कंपनी हिन्दुस्तान के मुद्रा बाज़ार की 40 प्रतिशत में सेंध लगा चुकी है. जिस दिन हमारा पाकिस्तान या नेपाल के साथ कोई भी गंभीर झगड़ा हुआ या जिस दिन चीन को लगा कि भारत बहुत ज्यादा उड़ रहा है, उसी दिन वो हमारी संपूर्ण अर्थव्यवस्था को तबाह करने की शुरुआत कर देगा. इसके लिए उसे किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि उसी के उपकरण हमारे पास हैं.**

लेन-देन करें. इसके पहले क्या सरकार देश के लोगों को ये विश्वास दिलाएगी कि हम अगले दस सालों में मोबाइल सिस्टम दुरुस्त कर लेंगे, कॉल इंट्रप्ट नहीं होगी. हम मोबाइल बैंकिंग के लिए जो फिगर भरेंगे, दबाएंगे, वो सचमुच हमारे ही अकाउंट से जुड़ेगी या कहीं और चली जाएगी और अगर यह गड़बड़ी होती है तो इसका जिम्मेदार कौन होगा. मेरा ख्याल है कि देश का हर आदमी संचार व्यवस्था खासकर मोबाइल सिस्टम के ऑपरेशन से परेशान है. एक कॉल दो से तीन बार ड्रॉप होती है और ड्रॉप होनी वाली कॉल पूरी करने के लिए जब आदमी दोबारा डायल करता है, तो नई कॉल चार्ज का पैसा उसकी जेब पर बोझ के रूप में आ जाता है. भारत सरकार का संचार मंत्रालय या सिर्फ प्रधानमंत्री यही वादा कर दें कि अगले साल भर में मोबाइल सिस्टम बिल्कुल चुस्त-दुरुस्त हो जाएगा और बैंकिंग सिस्टम में मोबाइल के ज़रिये कोई भी घपला नहीं हो पाएगा. आप मोबाइल में नंबर किसी का मिलाते हैं, नंबर किसी का मिल जाता है. जो चीज़ कभी नहीं होती थी, वो शुरू हो गई कि दो लोग मोबाइल पर बात कर रहे हों, तीसरा आदमी अचानक हैलो-हैलो करने लगता है. यह लैंडलाइन में तो होता था, लेकिन ये अब मोबाइल में भी होना लगा. इसका मतलब ये है कि हमारी संचार व्यवस्था को देखने वालों में कोई बुनियादी दिमाग़ी कमी है या कोई जान-बूझकर शरारत हो रही है. इसी को रोकने का काम तो सरकार का है, लेकिन सरकार इस काम को नहीं रोक पा रही है और न प्रधानमंत्री इस बात का वादा कर रहे हैं. आख़िर में, एक चिंता के साथ बात को ख़त्म करते हैं कि हमारी पूरी संचार व्यवस्था चीन के पास है. हमारे सारे सर्वर चीन में हैं. हमारे यहां के जितने इक्यूपमेंट हैं, वो सब चीन में हैं. यहां तक कि वो मशीनें जो कार्ड को स्वाइप करती हैं, वे भी चीन की बनी हुई हैं. हमारे देश की कैशलैस व्यवस्था की 40 प्रतिशत सीधी हिस्सेदारी अब चीन के पास पहुंच गई है, क्योंकि भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के अधिकारियों की मिलीभगत से या उनके षड्यंत्र से चीन की अलीबाबा नामक कंपनी हिन्दुस्तान के मुद्रा बाज़ार की 40 प्रतिशत में सेंध लगा चुकी है. जिस दिन हमारा पाकिस्तान या नेपाल के साथ कोई भी गंभीर झगड़ा हुआ या जिस दिन चीन को लगा कि भारत बहुत ज्यादा उड़ रहा है, उसी दिन वो हमारी संपूर्ण अर्थव्यवस्था को तबाह करने की शुरुआत कर देगा. इसके लिए उसे किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि उसी के उपकरण हमारे पास हैं.

मैं जब चीन गया था, तो मुझे वहां एक जानकारी मिली कि हमारे 14 उपग्रह सैटेलाइट चीन में बने थे. उनमें चीन ने जासूसी के यंत्र लगा दिये थे. हमने उन 14 उपग्रहों का पैसा चीन को एडवांस में पेमेंट कर दिया था, लेकिन चीन से हमने वो उपग्रह नहीं लिए, क्योंकि तब तक हमें पता लग चुका था कि चीन ने इसमें जासूसी के उपकरण लगा दिए हैं. वे उपग्रह अब भी चीन में पड़े हुए हैं. अब शायद हम उनको कभी लेंगे भी नहीं या शायद मोदी सरकार को तो पता भी नहीं होगा कि पिछली सरकार द्वारा किया गया यह कारनामा सुधारा भी जा सकता है कि नहीं. उल्टे इस सरकार ने एक नया कारनामा कर दिया कि हमारी मौद्रिक व्यवस्था में 40 प्रतिशत की सेंध चीन की कंपनी को लगाने की इजाज़त खुशी-खुशी दे दी. अब देखना है कि हमारी विदेश नीति, अर्थनीति देश के विकास का अगले 6 महीने में क्या हाल बनाती है. ■

editor@chauthiduniya.com

माउंटबेटन ने स्वतंत्रता दिवस के लिए 15 अगस्त का दिन क्यों तय किया!

राजिन्दर सच्चर

हाल ही में, ट्रिब्यून में छपे एक लेख में, नटवर सिंह ने लिखा था कि महात्मा गांधी ने विभाजन की योजना को मंज़ूरी दी थी. यह तथ्यात्मक रूप से ग़लत है. समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया की किताब गिल्टी मेन ऑफ इंडियाज पार्टीशन इस बारे में एक तथ्यात्मक स्थिति बताता है. लोहिया उस अंतिम कार्यसमिति की बैठक में मौजूद थे, जिसमें विभाजन योजना को स्वीकार किया गया था.

1947 में भारत के विभाजन को कांग्रेस ने क्यों स्वीकार किया, इस बारे में कुछ लोग यह मानते है कि ऐसा गांधी जी के हस्तक्षेप की वजह से ही हुआ, अन्यथा कार्य समिति इस योजना को अनुमोदित नहीं करती. यह निहायत अनुचित है और अंतिम स्थिति तक विभाजन को रोकने के लिए गांधी जी द्वारा किए गए प्रयासों की गलत तस्वीर प्रस्तुत करता है.

सबको यह अच्छी तरह से मालूम है कि जब जिन्ना की तरफ से विभाजन का आग्रह ज्यादा बढ़ गया था, तब गांधी जी ने एकतरफा कदम उठाते हुए जिन्ना को अविभाजित भारत का प्रथम प्रधानमंत्री बनाने के लिए जवाहर लाल नेहरू और सरदार पटेल से बात की थी. जिन्ना को उन्होंने कहा कि वे अपना मंत्रालय जिस तरह से चाहे बना सकते हैं. यहां तक कि उन्हें अपने केंद्रीय मंत्रिमंडल में केवल मुस्लिम लीग के मंत्रियों को रखने का अधिकार देने का भी आश्वासन दिया गया. यह कहा गया कि कांग्रेस को इस पर आपत्ति नहीं होगी. कोई भी यह नहीं बता सकता कि इस आश्वासन पर जिन्ना की प्रतिक्रिया क्या रही होगी. लेकिन, यह जानना भी दिलचस्प है कि जिन्ना ने ऑन रिकॉर्ड यह कहा था कि उनके मुंबई और दिल्ली स्थित घर को निष्क्रांत संपत्ति घोषित नहीं किया जाए, क्योंकि वह एक बेहतर भारत-पाक संबंध चाहते थे और साल में एक बार कम से कम एक महीना भारत में बिताना चाहते थे.

लेकिन ऐसा नहीं हो सका, क्योंकि नेहरू और पटेल ने इस प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया. इसलिए हममें से कई लोगों, जो उस वक्त युवा थे, के लिए यह सुनना कि विभाजन को गांधी जी की स्वीकृति मिली, दर्दनाक है और तथ्यात्मक स्थिति का प्रतिनिधित्व नहीं करता है. लोहिया जयप्रकाश नारायण के साथ कांग्रेस कार्य समिति की उस बैठक में मौजूद थे. वे लिखते हैं कि मैं विशेष रूप से उन दो बिंदुओं का उल्लेख करना चाहूंगा, जिसे गांधी जी ने इस बैठक में रखा था. उस बैठक में गांधी जी ने नेहरू और पटेल से शिकायती लहजे में बोला कि उन्हें विभाजन योजना के बारे में सूचित नहीं किया गया था. इससे पहले कि गांधी जी अपनी बात को पूरी तरह से रखते, नेहरू ने यह कहने के लिए हस्तक्षेप किया कि उन्हें इस बारे में पूरी तरह से सूचित किया गया था. महात्मा गांधी ने जब दुहराया कि उन्हें विभाजन की योजना के बारे में पता नहीं था, तब नेहरू ने अपने अवलोकन में थोड़ा सा बदलाव लाते हुए कहा कि नोआखली इतनी दूर है कि विभाजन के पूर्ण विवरण उन तक नहीं पहुंचा सके, अलबत्ता इस योजना की जानकारी मोटे तौर पर गांधीजी को लिख कर भेजा था. मैं इस केस में महात्मा गांधी के वर्जन को स्वीकार करूंगा न कि नेहरू को और ऐसा कौन नहीं मानेगा?

हालांकि एक झूठ के रूप में नेहरू को खारिज करने की जरूरत नहीं है. मुद्दा यह है कि जब तक नेहरू और पटेल खुद इस योजना के लिए प्रतिबद्ध हो चुके थे, क्या उससे पहले इसकी जानकारी महात्मा गांधी तक पहुंची थी? नेहरू के लिए ये ठीक नहीं था कि वे एक ऐसा अस्पष्ट पत्र प्रकाशित करें जो उन्होंने महात्मा गांधी को लिखा होता और जिसमें नाकाफी और गैर तथ्यात्मक जानकारी दी होती. निश्चित रूप से इस मामले में कहीं न कहीं कुछ सन्देहास्पद है. नेहरू और पटेल ने जाहिर तौर पर खुद यह फैसला किया था कि डील पर फैसला होने से पहले गांधीजी को नहीं डराना ही अच्छा होगा. नेहरू और पटेल की ओर मुड़ते हुए गांधीजी ने अपना दूसरा मुद्दा सामने रखा. वे चाहते थे कि अपने नेताओं द्वारा जाहिर की गई प्रतिबद्धताओं का सम्मान कांग्रेस पार्टी करे. इसलिए उन्होंने विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार करने के लिए कांग्रेस से कहा. सिद्धांत स्वीकार करने के बाद कांग्रेस को इसके क्रियान्वयन के विषय में एक घोषणा करनी चाहिए. इसे ब्रिटिश सरकार और वायसराय से एक तरफ होने के लिए कहना चाहिए, जैसे ही एक बार कांग्रेस और मुस्लिम लीग विभाजन को अपनी स्वीकृति दे देते हैं.

देश का बंटवारा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के द्वारा संयुक्त रूप से बिना किसी अन्य के हस्तक्षेप के किया जाना चाहिए. उस वक्त मैंने सोचा था और अभी भी सोचता हूं कि यह एक मास्टरस्ट्रोक था. गांधी जी के कूटनीतिक व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है, लेकिन मेरे विचार से उनके इस चतुर और बुद्धिमतापूर्ण प्रस्ताव के बारे में अभी तक ऑन रिकॉर्ड कुछ नही कहा गया है. इस कमी को पूरा करने के लिए मै ये बात यहां रख रहा हूं.

बंटवारे के समय गांधी जी की व्यथा इतनी असहनीय थी कि उन्होंने 15 अगस्त को दिल्ली में रहने से इनकार कर दिया. यह उस महान सेनानी की सज्जनता ही थी कि वे दिल्ली में आजादी के जश्न में शामिल न होकर सांप्रदायिक हिंसा ग्रस्त कलकत्ता में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित कर रहे थे.

मैं यह स्वीकार करता हूं कि देश में स्थितियां इस स्तर तक खराब हो चुकी थीं कि विभाजन को रोकना संभव नहीं था. अब तक हमने इस पर गंभीरता से विचार नहीं किया है कि अगर नेताओं ने उस समय राजनीति और राष्ट्रनीति की सही समझ दिखाई होती, तो लाखों लोगों की मौत और एक बड़ी बर्बादी को रोका जा सकता था. ये सब जानते हैं कि जब लॉर्ड माउंट बेटेन भारत भेजे गए थे, तब प्रधानमंत्री क्लिमेंट एटली ने कहा था कि जून 1948 तक ब्रिटिश सरकार भारत छोड़ देगी. क्या यह निर्णय दोनो तरफ के लाखो लोगों की सुरक्षा को ध्यान में रख कर लिया गया था. निःसंदेह कत्लेआम और घृणा तो होती ही, लेकिन दोनो देश लोगों की सुरक्षा का ध्यान रख सकते थे और सुरक्षित आवागमन की व्यवस्था कर सकते थे. लेकिन ऐसा नही हो सका और इसका कारण यह है कि माउंटबेटन ने अपनी तरफ से निर्णय लेते हुए यह घोषणा कर दी कि भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी दे दी जाएगी. इससे लाखो लोगों को सुरक्षित आवागमन की सुविधा देने के लिए वक्त ही नहीं मिला.

यह घोषणा माउंटबेटन ने खुद को महान बनाने और अपने अहंकार में की थी. एक सुप्रीम अलाइड कमांडर की हैसियत से उसने अगस्त 1945 में जापानी नेवी का आत्मसमर्पण अपने समक्ष करवाया था. हमारे अपने नेता भी दुर्भाग्यवश अहंकार में थे और लापरवाही बरत रहे थे. नतीजतन, इनकी चुप्पी का परिणाम लाखो लोगों की मौत और भारी संपत्ति के नुकसान के तौर पर सामने आई. क्या इतिहास उन्हें माफ करेगा, मुझे इसमे संदेह है. ■

लेखक दिल्ली उच्च न्यायालय के अवकाशप्राप्त मुख्य न्यायाधीश हैं.

feedback@chauthiduniya.com

तालीम से पकड़ी तरक़्क़ी की राह

गुजरात की घटना के पहले बाबरी मस्जिद विध्वंस ने मुसलमानों पर देशव्यापी असर डाला था. इस घटना का भी सकारात्मक प्रभाव यह हुआ था कि मुसलमानों ने अपने बच्चे-बच्चियों को पढ़ा-लिखा कर आगे बढ़ाने की प्रेरणा ली थी. लकड़ावाला ने ये दो उदाहरण देते हुए उम्मीद जताई थी कि उन घटनाओं के बाद मुस्लिम समाज की जड़ता खत्म होगी और आने वाले सालों में मुसलमानों की नयी पीढ़ी तेजी से आगे बढ़ेगी. 1992 के बाद 25 वर्षों का सफर तय हो चुका है. तब से अब तक दो पीढ़ियों के लोग अपने पैरों पर खड़े हो चुके हैं.

इर्शादुल हक

परिवार या समाज को तबाह कर देने वाली भयावह घटनाओं के बावजूद जिंदगी के सामने आशा की एक किरण मौजूद रहती है. उम्मीद की यही किरण उठ खड़ा होने के लिए प्रेरित करती है. गुजरात दंगों के बाद अहमदाबाद के सामाजिक कार्यकर्ता हनीफ लकड़ावाला ने एक बार बताया था कि वहां मुसलमानों के कारोबार व रोजगार तबाह हो गए थे. हिंदुओं और मुसलमानों के बीच नफरत की खाई काफी बढ़ चुकी थी. ऐसे में एक दूसरे से आपसी मदद की उम्मीदें क्षीण हो चुकी थीं. ऐसे में मुसलमानों ने समय के साथ खुद को उठ खड़ा होने और आगे बढ़ने के लिए तैयार कर लिया था. उनके पास छोटी पूंजी तक नहीं बची थी. उन्होंने आगे बढ़ने की जिद और हौसले से खुद को लबरेज कर लिया था. लकड़ावाला ने दंगों के चार-पांच साल बाद बताया था कि उस घटना के बाद मुस्लिम युवा पर जो सबसे सकारात्मक प्रभाव पड़ा था, वह था उनमें उद्यमशीलता का विकास होना. अपने उद्यम के बूते खड़ा होने की जिद के कारण सैकड़ों युवाओं ने कुछ सालों में खुद को खड़ा कर लिया था. गुजरात की घटना के पहले बाबरी मस्जिद विध्वंस ने मुसलमानों पर देशव्यापी असर डाला था. इस घटना का भी सकारात्मक प्रभाव यह हुआ था कि मुसलमानों ने अपने बच्चे-बच्चियों को पढ़ा-लिखा कर आगे बढ़ाने की प्रेरणा ली थी. लकड़ावाला ने ये दो उदाहरण देते हुए उम्मीद जताई थी कि उन घटनाओं के बाद मुस्लिम समाज की जड़ता खत्म होगी और आने वाले सालों में मुसलमानों की नयी पीढ़ी तेजी से आगे बढ़ेगी. 1992 के बाद 25 वर्षों का सफर तय हो चुका है. तब से अब तक दो पीढ़ियों के लोग अपने पैरों पर खड़े हो चुके हैं. इस बीच मुस्लिम समाज के शैक्षिक और आर्थिक विकास का कोई विस्तृत और प्रमाणिक सर्वे नहीं हुआ है. सच्चर कमिटी और रंगनाथ मिश्रा आयोग के सर्वे अगर सामने आये भी हैं, तो वे मुसलमानों के ओवरऑल स्थिति पर केंद्रित थे. वे सर्वे नयी पीढ़ी को केंद्र में रख कर नहीं किये गये थे. ऐसे में प्रमाणिकता के साथ कुछ कह पाना संभव नहीं है. लेकिन बिहार में जिस तरह के परिवर्तन पिछले आठ-दस सालों में दिखने लगे हैं, उन्हें देख और महसूस कर लगता है कि हालात में काफी तब्दीली आयी है. बात अगर शिक्षा की करें तो एक प्रमाणिक तथ्य यह है कि पिछले दस सालों में बिहार मदरसा शिक्षा बोर्ड, जो राज्य सरकार के अधीन काम करने वाला बोर्ड है, के आंकड़े बताते हैं कि मुस्लिम लड़कियां, लड़कों की तुलना में ज्यादा आगे बढ़ी हैं. पिछले कई सालों से बोर्ड से फौकानिया (मैट्रिक के समकक्ष) सर्टिफिकेट प्राप्त करने वाली लड़कियों की संख्या लड़कों से अधिक रही है. राज्य में करीब 1500 संबद्धता प्राप्त मदरसे हैं. इसके अलावा हजारों निजी मदरसे हैं, जिनके छात्र-छात्रायें मदरसा बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं. मदरसों का उल्लेख यहां इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि मदरसों में ज्यादातर गरीब मुसलमानों के बच्चे पढ़ते हैं. इसकी बड़ी वजह यह है कि उनके पास निजी स्कूलों में पढ़ाने का खर्च नहीं होता. यहां यह भी याद रखने की बात है कि मदरसों के बारे में जो आम राय समाज के कुछ वर्गों में स्थापित है, उनसे बिहार के ये मदरसे बिल्कुल अलग हैं. संबद्धता प्राप्त मदरसों के पाठ्यक्रम में विज्ञान, गणित, हिंदी और यहां तक कि अनेक मदरसों में कंप्युटर तक की शिक्षा दी जाती है. ऐसे में इन मदरसों से उत्तीर्ण छात्रों की बड़ी संख्या को सरकारी रोजगार के अवसर मिले हैं. पिछले दस वर्षों में अगर राज्य के स्कूलों में शिक्षकों की नियुक्ति पर ही नजर डालें, तो प्राइमरी और मध्यविद्यालयों में लगभग छह लाख शिक्षकों की नियुक्तियां हुई हैं. एक सरल अनुमान के मुताबिक, इन नियुक्तियों में मुस्लिम युवाओं ने अपनी आबादी के अनुपात में नियुक्तियां प्राप्त की हैं. बिहार में मुसलमानों की आबादी जनगणना रिपोर्ट के अनुसार 16.9 फीसदी है. ऐसे में, शिक्षकों के पद पर उनका प्रतिनिधित्व अगर उनकी आबादी के बराबर है, तो यह चकित कर देने वाली परिघटना है. क्योंकि सरकारी नौकरियों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व तृतीय या चतुर्थ वर्ग के पदों पर भी दस प्रतिशत से ज्यादा कभी नहीं रही. अफसर ग्रेड और प्रशासनिक पदों पर उनका प्रतिनिधित्व तो 3-5 प्रतिशत ही रहता है. पिछले कुछ वर्षों में राज्य के स्तर पर मुसलमानों ने अपना प्रतिनिधित्व हर क्षेत्र में बढ़ाया है. ऐसे उदाहरण सरकारी मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में भी देखने को मिलने लगे हैं. हालांकि जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी है, ऐसा कोई प्रमाणिक अध्ययन या सर्वेक्षण तो नहीं हुआ है, जिससे यह दावा किया जा सके कि मुसलमानों में शिक्षा या नौकरियों में प्रतिनिधित्व कितना बढ़ा है. हर वर्ष होने वाली मेडिकल और इंजीनियरिंग प्रवेश परीक्षाओं के परिणाम को नमूने के तौर पर पेश किया जाये तो स्थितियां आशाजनक मालूम होती हैं. बिहार के सरकारी मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में पिछले कई सालों से मुसलमानों का प्रतिनिधित्व 7-9 प्रतिशत रहा है. जबकि आठ-दस वर्ष पहले तक स्थितियां ऐसी नहीं थीं. मुसलमानों का प्रतिनिधित्व बढ़ने की एक वजह यह भी मानी जाती है कि बिहार की आरक्षण नीति का लाभ मुसलमानों ने उठाना शुरू किया है. बिहार में पिछड़ों के आरक्षण की दो श्रेणियां हैं- पिछड़ा और अतिपिछड़ा. अतिपिछड़ी जातियों के लिए 21 प्रतिशत आरक्षण है, जबकि पिछड़ी जाति के लिए 12 प्रतिशत. मुसलमानों की सर्वाधिक जातियां अतिपिछड़ों की श्रेणी में आती हैं, जहां उनकी प्रतियोगिता यादव, कुर्मी, कोयरी जैसी मध्यवर्ग की जातियों के बजाय सोनार, कहार, मल्लाह जैसे अतिपिछड़ों से है. ऐसे में मुसलमानों की सफलता की संभावनाएं अपेक्षाकृत बढ़ जाती हैं. ऐसा नहीं है कि आरक्षण का यह प्रावधान नया है. आरक्षण का यह प्रावधान दशकों पुराना है, लेकिन इसका लाभ मुसलमानों ने तब से ज्यादा लेना शुरू किया, जब उनमें पढ़ाई के प्रति संवेदनशीलता बढ़नी शुरू हुई.

ऐसा नहीं है कि शिक्षा के बाद सरकारी नौकरियों के प्रति ही मुसलमानों का रुझान बढ़ा है. अब ऐसे उदाहरण भी देखने को मिलने लगे हैं कि लोग निजी क्षेत्र के महंगे प्रोफेशनल कोर्सेज की तरफ भी ध्यान देने लगे हैं. ऐसे परिवारों की संख्या काफी बढ़ी है, जो अपने बच्चों को निजी क्षेत्र के मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में भी दाखिले करवाने का जोखिम उठाने लगे हैं. पूर्वी चम्पारण के छौड़ादानों के पिपरा गांव के नुरूल आजम 1980 के दशक के ग्रेजुएट हैं. कोई सरकारी नौकरी नहीं मिली, तो मजबूरन उन्हें परिवार के पारंपरिक पेशे खेती को अपनाना पड़ा. लेकिन जब उनके बच्चों की बारी आयी और वे प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल नहीं हुए तो उन्होंने अपनी जमीन बेच कर एक बेटे को मेडिकल कॉलेज, तो दूसरे को इंजीनियरिंग कॉलेज में नामांकन करवाया. नुरूल आजम बताते हैं कि खेती से उन्होंने बस इतना किया कि वे अपने बच्चों के पेट पालने में सफल रहे. लेकिन नयी पीढ़ी आगे बढ़े, इसके लिए उन्होंने जमीन बेच कर अपने बच्चों को प्रोफेशनल कोर्सेज में नामांकन करवाया. नुरूल आजम ऐसे कई उदाहरण उंगलियों पर गिनाते हैं और बताते हैं कि उनके कई रिश्तेदारों ने, जिनके पास जमीनें थीं, उन्हें बेच कर अपने बच्चों को पढ़ाया है. आजम मानते हैं कि शिक्षा से ही बड़ा परिवर्तन संभव है.

राजनीतिक सशक्तीकरण: पिछले एक दशक में बिहार के मुसलमानों का राजनीतिक सशक्तीकरण भी आसानी से देखने को मिलने लगा है. 2006 के बाद से स्थानीय निकायों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व लगातार बढ़ाता गया है. यही हाल नगर निकायों में भी देखने को मिला है. मुखिया, सरपंच, वार्ड पार्षद आदि सीटों पर भी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व काफी बढ़ा है. हालांकि इसकी सबसे बड़ी वजह अतिपिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का अलग से कोटे के निर्धारण की व्यवस्था है. बिहार सरकार ने कोई 11 वर्ष पहले स्थानीय निकायों में आरक्षण की व्यवस्था लागू की, जिसका लाभ मुसलमानों ने खूब उठाया. जहां पहले दबंग और अगड़े वर्ग के लोग ही मुखिया या सरपंच बनने का सपना देख सकते थे, वहीं अब पिछड़े वर्ग के आरक्षण ने कमजोर वर्गों को भी अवसर प्रदान किया है. नतीजा यह सामने आया है कि अतिपिछड़ा व पिछड़ा कोटे से मुसलमानों की अच्छी खासी तादाद जीत कर मुखिया और सरपंच बनने लगी है. इस मामले में सबसे बड़ा उदाहरण खुद पटना के मेयर का है. पटना के मेयर फजल इमाम लगातार दो टर्म से इस पद पर बने हुए हैं. वे अतिपिछड़ा वर्ग से आते हैं और यह पद अतिपिछड़े के लिए आरक्षित है. माना जाता है कि पटना के मेयर के पद पर अगर अतिपिछड़ा आरक्षण नहीं होता तो इस पद पर किसी मुसलमान का चुना जाना लगभग असंभव होता.

बिहार के मुसलमानों में आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक सशक्तीकरण का यह आरंभिक दौर है. यह सच है कि मुसलमानों के बदलते हालात के लिए आरक्षण भी एक वजह है, पर इसकी सबसे बड़ी वजह उनके अंदर धीरे-धीरे आ रही जागरूकता है. इसी क्रम में इस सकारात्मक खबर को भी जोड़ लिया जाये कि 2015 विधानसभा चुनाव में बिहार असेंबली में अब तक के सबसे ज्यादा मुस्लिम विधायक चुन कर आये हैं. मौजूदा विधानसभा में मुसलमानों की नुमाइंदगी करीब 17 प्रतिशत है, जो उनकी आबादी के अनुरूप है.■

feedback@chauthiduniya.com

कैमूरांचल में फिर पनपने लगी नक्सलवाद की पौध

ममता चौहान

चार वर्षों से शांत रोहतास कैमूर का दक्षिणी हिस्सा कैमूराचंल एक बार फिर नक्सली गतिविधियों से आंदोलित होने लगा है. पूर्व में समानान्तर सता कायम कर चुके भाकपा माले के हथियार बंद दस्तों की जगह इस बार प्रतिबंधित नक्सली संगठन टीपीसी के दस्ते ने आतंक राज कायम करने की कमान संभाल ली है. इसकी शुरुआत नक्सलियों ने बड्डी थाना क्षेत्र में महुआ पोखर के समीप दुर्गावती जलाशय परियोजना की नहर खुदाई कार्य में लगी कंपनी की दो मशीनरियों को जलाकर की है. 2012-13 में तत्कालीन पुलिस अधीक्षक मनु महाराज द्वारा चलाए गए अभियान में सौ से ज्यादा नक्सली गिरफ्तार हुए थे. सोलह नक्सलियों ने पुलिस के सामने आत्मसमर्पण किया था. तब इस क्षेत्र में प्रतिबंधित नक्सली संगठन भाकपा माले की समानान्तर सत्ता चलती थी. सोन गंगा विंध्याचल जोन के इस केंद्रीय भूमि पर कामेश्वर बैठा से लेकर समर साहू, निराला यादव आदि नक्सली कमांडरों द्वारा कायम की गई सत्ता को पुलिस ने दो वर्षो की मेहनत में समाप्त कर दिया था. इससे चार वर्ष कैमूरांचल की धरती शांत रही. इस दौरान विकास बर्मन, चंदन कुशवाहा और शिवदीप लांडे जैसे पुलिस कप्तानों के कार्यकाल बीते. चार वर्षों के बाद एक बार फिर शुरू हुई नक्सली गतिविधियां पुलिस के लिए चुनौती खड़ी कर रही हैं. अजय राजभर के दाहिने हाथ कहे जाने वाले अनिल कुशवाहा के हाथों में टीपीसी दस्ते की कमान है. इसे लेकर रोहतास पुलिस के तत्कालीन नक्सल एएसपी मोहम्मद सुहैल का बयान आया था कि पुलिस के साथ मुठभेड़ में अनिल कुशवाहा मारा गया. परंतु बाद में मारे जाने वाले युवक की पहचान हुई और पुलिस का दावा समाप्त हो गया. अनिल कुशवाहा बीस कमांडरों के साथ कैमूर के अधौरा से लेकर रोहतास के डुमरखार तक अपनी गतिविधियों को संचालित करता रहा है. अनिल कुशवाहा कैमूर जिला के भगवान थाना क्षेत्र के कसेर गांव का रहने वाला है. उसने चेनारी के केनार कला गांव में चार वर्ष पूर्व एक बड़ी घटना को अंजाम दिया था.

बड्डी के मुहुआ पोखर में टीपीसी के इस दस्ते ने निर्माण कंपनी के एक पोखलेन और एक जेसीबी मशीन को जलाकर पुलिस को चुनौती दी है. घटना के एक महीने पूर्व गीता घाट में इसी दस्ते ने लेवी के लिए उक्त निर्माण कंपनी को धमकी भरा पत्र दिया था. इसकी सूचना स्थानीय पुलिस को भी दी गई थी. पुलिस की सतर्कता के बावजूद टीपीसी दस्ते ने यह कार्रवाई की है. इधर इंद्रपुरी से लेकर अधौरा के बीच पचास ईंट भट्ठे मालिकों से मांगी जा रही लेवी भी पुलिस के लिए कम चुनौती नहीं है. टीपीसी के दस्ते में हथियारबंद सदस्यों की बढ़ती संख्या और नक्सली घटनाओं में इजाफा से कैमूरांचल के निवासी दहशत में हैं. नक्सलियों ने कैमूरांचल के रोहतास कैमूर में बसे 160 गांवों के विकास कार्यों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया है. इन गांवों में सड़क, विद्यालय, अस्पताल आदि निर्माण कार्य शुरू हुए हैं. इससे ऐतिहासिक रोहतास बढ़ किला, शेरगढ़ किला, धार्मिक धरोहर गुप्ता धाम, रोहितेश्वर शिव आदि जगहों पर पहुंचने वाले पर्यटकों और श्रद्धालुओं की संख्या भी प्रभावित होगी. अभी नक्सल अभियान की जिम्मेवारी अपर पुलिस अधीक्षक सुशांत सरोज के हाथों में है. उतरप्रदेश में विधानसभा चुनाव के मद्देनजर नक्सली गतिविधियों पर काबू पाने के लिए बिहार के रोहतास कैमूर, उत्तरप्रदेश के सोनभद्र चंदौली, झारखंड के पलामू गढ़वा छतीसगढ़ के रामानुजगंज पुलिस की संयुक्त बैठक सोनभद्र में हुई. इसमें कैमूरांचल में पुन: सक्रिय हो रहे टीपीसी दस्ते की गतिविधियों को रोकने के लिए एक योजना बनाई गई है. एक बात तो तय है कि पुनर्गठन के दौर से गुजर रहे नक्सली संगठन कैमूरांचल में अगर इसी रफ्तार से सक्रिय रहे तो एक वर्ष में वे पुराने स्वरूप में लौट आएंगे. फिलहाल नक्सली अपने सदस्यों की संख्या बढ़ाने में जुटे हैं. सदस्यों के बढ़ने पर हथियारों की जरूरत भी पड़ेगी. उस हालात में नक्सली संगठन पुलिसकर्मियों पर गुरिल्ला हमला कर हथियार लेने का प्रयास कर सकते हैं. इससे पूर्व रोहतास में लोहराडीह, गायघाट, बादलगढ़, मटियावां आदि ऐसे मुठभेड़ हुए, जिसमें नक्सलियों ने पुलिस को काफी नुकसान पहुंचाया था. 2003 में पीपुल्स वार ग्रुप के दस्ते ने नौहट्टा के डबुला मोड़ पर हमला कर एक दर्जन पुलिसकर्मियों को मारकर उनके हथियार छीन लिए थे. 2007 में मैदानी इलाके के राजपुर और बघैला थाना पर हमलाकर नक्सली दस्ते ने दोनों जगहों से 14 हथियार उड़ाये थे. इस दौरान 13 पुलिसकर्मियों की हत्या भी हुई थी. फिलहाल बादलगढ़ और बंजारी में सीआरपीएफ की दो कंपनियां नक्सली गतिविधियों पर कमान कसने के लिए तैनात हैं. सीआरपीएफ की एक टुकड़ी यदुनाथपुर में भी लगाई गई है. परंतु इस क्षेत्र में पड़ने वाले थाने चेनारी, बड्डी, दरिगांव, तिलौथू, अमझोर, रोहतास, नौहट्टा चुटिया, कैमूर के करमचट, भगवानपुर, अधौरा आदि के पुलिस कर्मी हमेशा नक्सली दस्तों के निशाने पर रहे हैं. दस्तों में कमांडरों की बढ़ती संख्या के कारण किसानों से भी हथियार लूटे जाते हैं. अस्सी के दशक में यह क्षेत्र कभी दस्यु गिरोहों, जिसमें रामाशीष बिंद, मोहन बिंद, दादा आदि की गिरफ्त में था. बाद में उसकी भरपाई 90 के दशक में पीपुल्स वार ग्रुप और भाकपा माले के हथियारबंद दस्तों ने किया. 2004 में पीपुल्स वार ग्रुप और भाकपा माले के विलय के बाद आक्रामक नक्सली संगठनों ने छह वर्षों में पूरे कैमूरांचल में साठ से ज्यादा हत्याएं की थीं.■

feedback@chauthiduniya.com

ईम्पोर्टेड केमिकल से तैयार, लैब टेस्टेड
पेन्ट डिस्टेम्पर
कोई भी हो
वॉल पुट्टी केवल ईटालियन वॉल पुट्टी
Laboratory Tested
Please Compare Lab Report
Laboratory Tested
Made from Imported Chemicals
ईटालियन
व्हाईट
वॉल पुट्टी
Slight Costly but Superior
लैब रिपोर्ट अवश्य चेक करें ।
लैब रिपोर्ट हमारे सभी डीलर्स के यहां उपलब्ध है
प्रखण्ड स्तर या अपने क्षेत्र हेतू सप्लायर / डीलरशिप के लिए सम्पर्क करें ।
Mob : 9431234022 / 9435040133 Mail ID : mcwaterproof@yahoo.com
सीमेन्ट की ताकत बढ़ाए, घर को मजबुत बनाऐ
सीमेन्ट
कोई भी हो परन्तु
वाटरप्रूफिंग केमिकल सिर्फ
मिस्टर केमिस्ट
सीमेन्ट कोई भी हो लेकिन वाटरप्रूफिंग केमिकल मिस्टर केमिस्ट ही हो, क्योंकि मिस्टर केमिस्ट वाटरप्रूफिंग केमिकल ईम्पोर्टेड केमिकल से बनाया गया है, प्रत्येक पैक पर नम्बर युक्त होलोग्राम से नकल से पूरी तरह सुरक्षित १, ५, १०, २० एवं २०० लीटर होलोग्रामिक पैक में अब आपके यहां भी उपलब्ध । मिस्टर केमिस्ट वाटरप्रूफिंग सीमेन्ट की ताकत बढ़ाए, घर को मजबुत बनाए ।
Mob : 9431234022 / 9435040133 Mail ID : mcwaterproof@yahoo.com

रोहतास जिले के ग्रामीण इलाकों में सोलर लाइट लगाने की योजना का विरोध कर रहे अधिकारी

चिराग़ तले अंधेरा

“देश भर के कई राज्यों में ग्रामीण इलाकों में सोलर सिस्टम लगाने के लिए भारत सरकार के विज्ञान और तकनीकी मंत्रालय ने कंपनी को अधिकृत किया है. इस योजना के तहत अभी यह फर्म ओडीशा, झारखंड, आंध्रप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश में सोलर लाइट लगाने की योजना पर काम कर रही है. इसी क्रम में कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिब्लिटी के तहत उन्होंने अपने पंचायत-गांव को रौशन करने की योजना बनाई. इस योजना को भारत सरकार के विज्ञान एवं तकनीकी मंत्रालय के एक उपक्रम सेंट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड के तहत नोखा प्रखंड के हथिनी पंचायत के गांवों के प्रत्येक घरों को निशुल्क सोलर सिस्टम से लैस करने का प्रोजेक्ट तैयार किया गया. पहले फेज में हथिनी पंचायत के 7 गांवों के 1050 घरों में सोलर लाइट लगाने की योजना को मूर्तरूप देना शुरू किया.”

राणा अवधूत कुमार

सूबे के मुखिया नीतीश कुमार गांवों को स्मार्ट बनाने के लिए सात निश्चय योजना के तहत पूरे बिहार की यात्रा कर रहे हैं. वे निश्चय यात्रा के साथ चेतना सभा का आयोजन कर लोगों की राय भी ले रहे हैं, ताकि बिहार के विकास में सबकी सहभागिता संभव हो सके. वहीं जमीनी हालात पर नजर डालें तो अधिकारियों की लालफीताशाही के कारण जनहित के कार्य भी अधूरे पड़े रह जाते हैं. हालात ऐसे हैं कि जब कोई उद्यमी जनहित कार्य करना चाहता है, तब अधिकारीगण इन कार्यों में अड़ंगा लगाने पर आमादा हो जाते हैं. कभी-कभी भलाई किस तरह मुसीबत बन जाती है, इस रिपोर्ट ने उसे चरितार्थ किया है.

रोहतास जिला के अंतर्गत नोखा प्रखंड के हथिनी पंचायत में कुछ ऐसा ही मामला सामने आया. गांव के ही कुछ लोगों ने पूरे पंचायत को रौशन करने समेत दो अन्य विकास कार्यों को धरातल पर उतारने की कोशिश की. नोखा प्रखंड के बीडीओ ने आनन-फानन में 15 दिन पूर्व बिना किसी लिखित सूचना या नोटिस के इन कार्यों को बंद करा दिया. इतना ही नहीं, विकास कार्यों की पहल करने वाले रूपहथां गांव के रविशंकर तिवारी के घर में ताला जड़ कार्यालय को भी सील कर दिया. इसके बाद से ही सोलर लाइट का कार्य बाधित है. ग्रामीणों के एक शिष्टमंडल ने बीडीओ से मिलकर इस संदर्भ में बात करने की कोशिश की, तो उनकी बातों को सुनने की बजाय वे उन पर ही नाराज हो गए.

प्राप्त जानकारी के अनुसार, रोहतास जिला के नोखा प्रखंड के हथिनी पंचायत के रूपहथां गांव के निवासी कमलेश कुमार सोलर लाइट के बड़े व्यवसायी हैं. वे देश भर के कई राज्यों के ग्रामीण इलाकों में सोलर सिस्टम लगाने के लिए भारत सरकार के विज्ञान और तकनीकी मंत्रालय द्वारा अधिकृत किए गए हैं. इस योजना के तहत अभी उनकी फर्म ओडीशा, झारखंड, आंध्रप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश में सोलर लाइट लगाने की योजना पर काम कर रही है. इसी क्रम में कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसबिलिटी के तहत उन्होंने अपने पंचायत-गांव को रौशन करने की योजना बनायी. इस योजना को भारत सरकार के विज्ञान एवं तकनीकी मंत्रालय के एक उपक्रम सेंट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड के तहत नोखा प्रखंड के हथिनी पंचायत के गांवों के प्रत्येक घरों को निशुल्क सोलर सिस्टम से लैस करने का प्रोजेक्ट तैयार किया. पहले फेज में हथिनी पंचायत के 7 गांवों के 1050 घरों में सोलर लाइट लगाने की योजना को मूर्तरूप देना शुरू किया. पंचायत के हथिनी और रूपहथां गांवों में तो सौ प्रतिशत घरों में सोलर लाइट लगा दिया गया है. इसके अलावा पंचायत के रिपुपुर, बाद, फरीदपुर, नावाडीह, तिलई गांवों में भी कुछ घरों को लाइट से लैस कर दिया गया है.

इस योजना की खास बात यह है कि इस योजना में सभी वर्गों के लोगों को बिना किसी भेदभाव के शामिल किया गया है. लेकिन यह विकास कार्य स्थानीय मुखिया को रास नहीं आया और उन्होंने कुछ ग्रामीणों के फर्जी हस्ताक्षर कराकर बीडीओ से इसकी शिकायत कर दी. इसके बाद स्थानीय विधायक सह सूबे के मंत्री को आवेदन देकर कार्रवाई की मांग की गई. हैरत की बात तो यह है कि किसी कॉरपोरेट सेक्टर द्वारा कराए जा रहे विकास कार्य पर बीडीओ ने एक लिखित सूचना तक नहीं दिया. बिना कोई स्पष्टीकरण लिए बीडीओ ने वितरण बंद करने का आदेश जारी करते हुए घर को सील कर दिया. इसी बीच मामले ने तूल पकड़ लिया. बीडीओ के एकतरफा फैसले लेने को पंचायत के लोगों ने चुनौती देते हुए आंदोलन करने की चेतावनी दी. कंपनी के वरीय अधिकारियों ने भी रोहतास के जिलाधिकारी अनिमेश कुमार पाराशर से संपर्क किया. उन्होंने बीडीओ द्वारा बंद कराए गए विकास कार्य की जानकारी दी तो डीएम ने खेद प्रकट किया. उन्होंने बीडीओ को तत्काल ताला खोलने एवं इस कार्य में पूरा सहयोग करने का निर्देश दिया.

> **खास बात यह है कि इस योजना में सभी वर्गों के लोगों को बिना किसी भेदभाव के शामिल किया गया है. लेकिन यह विकास कार्य स्थानीय मुखिया को रास नहीं आया. उन्होंने कुछ ग्रामीणों के फर्जी हस्ताक्षर कराकर बीडीओ से इसकी शिकायत कर दी. इसके बाद स्थानीय विधायक सह सूबे के मंत्री को आवेदन देकर कार्रवाई की मांग की गई. हैरत की बात यह है कि कॉरपोरेट सेक्टर द्वारा कराए जा रहे विकास कार्य पर बीडीओ ने एक लिखित सूचना तक नहीं दी. बिना कोई स्पष्टीकरण लिए बीडीओ ने वितरण बंद करने का आदेश जारी करते हुए घर को सील कर दिया. इसी बीच मामले ने तूल पकड़ लिया. बीडीओ के एकतरफा फैसले को पंचायत के लोगों ने चुनौती देते हुए आंदोलन करने की चेतावनी दी.**

इस कार्रवाई के बारे में पूछे जाने पर बीडीओ धर्मेंद्र कुमार ने कहा कि प्रखंड का मालिक बीडीओ होता है. बिना उनकी इजाजत के कोई, कैसे और किस आधार पर सोलर लाइट बांट सकता है. संबंधित कागजात देखने और पूरी जांच करने के बाद ही अगली कार्रवाई की जाएगी. लिखित शिकायत मिलने के बाद ही कार्रवाई की गई. हालांकि, डीएम के निर्देश के बाद बीडीओ की बोली पूरी तरह से बदल गई है. उसने न सिर्फ ताला खोल दिया है, बल्कि अपने स्तर पर सहयोग का आश्वासन भी कंपनी के प्रतिनिधियों को दिया है. हालांकि पर्यटन मंत्री अनिता चौधरी ने इस संबंध में एसडीओ को जांच करने का निर्देश दिया है. जब मंत्री से इस बारे में बातचीत की गई, तो उन्होंने कहा कि यदि गरीबों, पिछड़ों एवं अन्य सभी वर्गों के लिए यह एकसमान योजना है तो फिर इस तरह के समाजसेवियों को तो भरपूर प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि अपने गांव-जिला के साथ राज्य के विकास में ऐसे लोग और अधिक योगदान दे सकें. डीएम के हस्तक्षेप के बाद जब सोलर लाइट वितरण का कार्य दोबारा शुरू हुआ, तो हथिनी पंचायत के करीब 1500 लोगों ने एक हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन सौंपकर बधाई दी. उन्होंने कार्य शुरू कराने के लिए प्रशासन का आभार व्यक्त किया.

वहीं सूर्या इलेक्ट्रॉनिक्स एंड इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड के प्रबंधक रविशंकर तिवारी ने बताया कि भारत सरकार द्वारा समर्थित इस योजना के तहत कई गांवों को सोलर लाइट से लैस करने की योजना पर काम किया गया, जिसमें सभी घरों में निशुल्क सोलर सिस्टम दिया गया है. गांव में पांच बिघा खेत पर सोलर पंप द्वारा खेती कराने की योजना भी सरकार से पास हो गयी है. इसके अलावा एक और गांव को गोद लेकर वहां बुनियादी सुविधाओं को बढ़ाने संबंधी योजना का प्रस्ताव विचाराधीन है. अधिकारियों के रवैये और उनके नकारात्मक रूख से काफी निराशा होती है. इन परिस्थितियों में भला कौन अपने गांव, पंचायत या राज्य के विकास में हाथ बंटाना चाहेगा. सरकार और उनकी मशीनरी को ऐसी योजनाओं के लिए आगे आकर सहयोग करना चाहिए. सोलर लाइट हो या अन्य कोई योजना इन सभी योजनाओं का लाभ तो आखिरकार जनता को ही मिलता है. सवाल उन अधिकारियों की मानसिकता को लेकर है, जो न तो खुद कुछ करते हैं और न दूसरों को करने देते हैं.■

feedback@chauthiduniya.com

बुरी आदतों से बचें और बचायें
ariskon Pharma Pvt.Ltd.
An ISO 9001 : 2008 Certified Co.
डॉ. अमित कुमार (बीडीएस.) Dr. A.K. Singh
फैमलि डेन्टल केयर बिहार टॉकिज रोड, लाइन बाजार, पूर्णियां

युवा लेकिन अनुभवी डॉ. अमित कुमार से बात कर यह लगा कि वे लोगों में पल-बढ़ रहे बुरी आदतों से काफी चिन्तित हैं। उन्होंने बताया कि देखिये 4 फरवरी वर्ल्ड ओरल कैंसर डे है और आज ही आप मेरा इन्टरव्यू ले रहे हैं इसलिए सबसे पहले मेरा अनुरोध है कि लोग खुद तो हर प्रकार के नशे से बचें ही मसलन, तम्बाकू, गुटका, निकोटीन वाली चिजों से साथ ही अन्य लोगों को भी इन आदतों में पडने से बचाएं। यहां तक कि पान सुपारी कत्था आदि जैसी आदतों से भी परहेज करने को कहा। उनका कहना है कि इन सबसे धीरे-धीरे आपके सुन्दर दांत तो खराब होते ही हैं साथ ही मुंह के कैंसर होने की प्रबल संभावना बनी रहती है। ओरल कैन्सर होने के बाद धीरे धीरे आपका मुंह का खुलना बंद हो जाता है। जिसे ट्रिसमस भी कहते हैं। डॉ. अमित ने बताया कि उनके पास 10 में से 6 मरीज दांतों से नहीं मसूढ़ों से परेशान होकर आते हैं। **कुछ टिप्स डॉ. अमित के द्वारा**–1) नियमित दो टाईम ब्रश करें सुबह और रात को। हर तीन महीने में ब्रश को बदलें। ब्रश का समय 2 से 3 मिनट होना चाहिए। स्वाद के अनुसार पेस्ट का चुनाव करें यदि दांत आपके सेन्सेटिव हैं तो डॉक्टर से परामर्श कर पेस्ट का चुनाव करें। ब्रश को 90 डिग्री नहीं 45 डिग्री पर लाकर घुमायें। जैसे झाडू मारते हैं उसी तरीके से दांतों पर घुमायें। सबसे महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए डॉ अमित ने बताया कि आप कुल्ला अवश्य करें जब भी खाना खायें या नाश्ता करें तो अपने साफ और बिना बढ़े हुए नाखुन वाले हाथों से कुल्ला अवश्य करें। चाहे वह बच्चा हो या बड़ा। बच्चे जब भी चिपचिपा पदार्थ खाते हैं तो कुल्ला अवश्य करायें मुंह में अंगुल डालकर और रगड़ कर। बाजार में डेन्टल फ्लॉस धागा आता है उससे दो दांतों के बीच फंसे पदार्थ को अवश्य निकालें। ▪ भारती

ACOBA CAP/SYP/INJ
Methylcobalmin, Lycopene, Multivitamin Multimineral, Ginseng & Antioxident
Carbo - XT
Ferrous Ascorbate with Folic Acid Tab.
AREX
Dextromethorphan, Guaiphenesine Ammonium chloride Cough Syp.
ASRFEN-P
Acedofenac+Paracetamol Serratiopeplidase Tab.
ECTALOPAM
Escilalopram oxalate & Clonazepam Tablets
SILIPLEX
Silymarin, Vitamin B-Complex & Lactic acid, Calcium, Bacillus Cap/Syp
NOKSIRA
NOKSIRA Pharma Pvt.Ltd.

चुनाव प्रक्रिया में बदलाव के ज़रिए लोकतंत्र बचाने की जन-पहल

प्रत्याशी का चेहरा बने चुनाव चिन्ह

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से चुनाव चिन्ह की अनिवार्यता हटाने के लिए तेज़ हो रहा आंदोलन

दीनबंधु कबीर

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) से चुनाव चिन्हों को हटाने का मसला एक व्यापक जन आंदोलन की शक्ल लेता जा रहा है. संविधान का सहारा लेकर शुरू हुए इस अभियान का ही नतीजा है कि चुनाव आयोग ने ईवीएम मशीन पर चुनाव चिन्हों के साथ-साथ प्रत्याशियों का चेहरा लगाने का भी नियम लागू किया. अब उसी अभियान का अगला हिस्सा है ईवीएम मशीनों से चुनाव चिन्हों का हटाया जाना. लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन के संयोजक प्रताप चंद्रा कहते हैं कि चुनाव चिन्हों के बल पर चुनाव जीतने का जो अलोकतांत्रिक और असंवैधानिक चलन रहा है, वह समाप्त हो जाएगा और वही प्रत्याशी जीतेगा जिसका चेहरा उसके क्षेत्र में जनप्रिय होगा. सबसे पहले बिहार चुनाव में ईवीएम पर प्रत्याशियों की तस्वीर लगाने की प्रक्रिया शुरू की गई. इस बार विभिन्न राज्यों में हुए और हो रहे विधानसभा चुनावों में यह प्रक्रिया जारी है. ईवीएम पर अभी प्रत्याशियों की ब्लैक एंड व्हाइट फोटो लग रही है, ईवीएम पर प्रत्याशियों की रंगीन तस्वीर लगाने के लिए आयोग से बातचीत चल रही है.

लोकतंत्र में नागरिक अपना जन-प्रतिनिधि चुनता है और उससे अपेक्षा करता है कि वह जनहित के प्रति जवाबदेह होगा. लेकिन होता इसका ठीक उल्टा है. जनता द्वारा चुना गया जन-प्रतिनिधि बाद में दल-प्रतिनिधि बन जाता है और उसकी जवाबदेही जनता के प्रति न होकर दल के प्रति हो जाती है. जनता का हित देखने के बजाय उसके लिए दल का हित प्राथमिक हो जाता है. विडंबना यह है कि स्वतंत्र, शुद्ध और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए बना चुनाव आयोग इसे नजरअंदाज करता रहा है. चुनाव आयोग ने शुद्ध और निष्पक्ष चुनाव कराने के नाम पर प्रत्याशियों के लिए चुनाव-चिन्हों का निर्धारण और आरक्षण कर दिया. इससे चुनाव की पूरी प्रक्रिया अशुद्ध और पक्षपातपूर्ण बन गई. संविधान द्वारा प्रदत्त अवसर की समानता के अधिकार का खुला हनन होता रहा और भारतीय लोकतंत्र चुनाव-चिन्हों का गुलाम होकर रह गया. आरक्षित-चुनाव-चिन्ह की सत्ता पर नियंत्रण की सुनिश्चितता के कारण ही कॉरपोरेट घराना, पूंजीपति और औद्योगिक जगत इनका संरक्षण करने लगा, आर्थिक मदद देने लगा और संसाधन मुहैया कराने लगा. इसके एवज में उसने अपने लाभ के लिए आर्थिक नीतियों को प्रभावित किया, भ्रष्टाचार और अनियमितता के बूते राजनीतिक दल पर दबाव बनाकर लाभ कमाया. यही वजह है कि अंग्रेजों के जाने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के बजाय राजनीतिक पार्टियां कंपनियों की तरह देश पर राज करने लगीं. कभी कांग्रेस की सरकार के रूप में तो कभी भाजपा की सरकार के रूप में. कभी सपा सरकार तो कभी बसपा सरकार के रूप में. भारतीय लोकतंत्र की विडंबना यही है कि कोई भी सरकार सम्पूर्ण भारत की सरकार आज तक नहीं बन सकी. आरक्षित चुनाव-चिन्हों पर जीतने वाले प्रतिनिधियों की गिनती के आधार पर जो ज्यादा हुए, उनकी पार्टी ने सरकार बना ली. फिर बचे लोगों ने खुद को विपक्ष मान लिया और इसी तरह राजकाज चलता रहा. कभी यह सत्ता में तो कभी वह. दलों के आरक्षित चुनाव चिन्ह ही टिकट के रूप में नीलाम होते रहे और राजनीति देश में भ्रष्टाचार को पालती-पोसती रही.

चुनाव लड़ने की योग्यता संविधान के अनुच्छेद-84 में निर्धारित है. संविधान के इस अनुच्छेद के अनुसार वही व्यक्ति चुनाव लड़ेगा जो भारत का नागरिक हो, मतदाता हो और बालिग हो. स्पष्ट है कि कोई दल, निकाय या गुट इस निर्धारण की परिभाषा के दायरे में नहीं आता. यही वजह है कि दलों का नाम ईवीएम पर नहीं छपता है. फिर ईवीएम पर चुनाव चिन्ह कैसे और क्यों छपने लगे? यह एक गंभीर सवाल है. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-75 में सरकार बनाने की व्यवस्था दी गई है. इस अनुच्छेद में यह कहीं नहीं कहा गया है कि जिस समूह के पास प्रतिनिधि ज्यादा होंगे उसे सरकार बनाने के लिए बुलाया जाएगा. बल्कि यह कहा गया है कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री को नियुक्त करेंगे और प्रधानमंत्री अपना मंत्रिमंडल चुनेगा. बहरहाल, लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन के संयोजक प्रताप चंद्रा कहते हैं कि समानता और अवसर की समता के लिए लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन पिछले कई साल से सतत् संघर्ष के बाद इस मुकाम तक पहुंचा कि भारी जन-दबाव में चुनाव आयोग ने यह फैसला किया कि लोकसभा और विधानसभा के चुनाव में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन पर सभी प्रत्याशियों की फोटो लगाई जाएगी. संवैधानिक प्रावधानों के मुताबिक भविष्य में ईवीएम पर पार्टी के चुनाव चिन्ह के बजाय केवल प्रत्याशी की फोटो लगने की उम्मीद है. इससे यह फायदा होगा कि प्रत्याशी अपने क्षेत्र के मतदाताओं से अपनी फोटो को ही अपना चुनाव-चिन्ह बताकर प्रचार कर सकेंगे और जनता के बीच परिचित चेहरे को ही स्वीकार्यता मिल सकेगी. ईवीएम पर चिन्ह (आकृति) लगाने के पीछे अशिक्षित मतदाताओं को सुविधा प्रदान करने का तर्क था. इस तर्क को भी आगे बढ़ाएं तो ईवीएम पर प्रत्याशी की फोटो अशिक्षित मतदाताओं के लिए अधिक सुविधाजनक हो जाएगी. हालांकि देश में अब निरक्षरता का प्रतिशत भी काफी कम रह गया है. ईवीएम पर प्रत्याशी की फोटो लगने से चुनाव चिन्ह की भूमिका समाप्त होने की दिशा में है. चुनाव लड़ने वाले व्यक्ति के लिए जनता के बीच रहकर काम करना जरूरी हो जाएगा. ईवीएम से चुनाव चिन्ह हटते ही जनता द्वारा संवैधानिक सरकार बन पाएगी और जनहित में काम हो सकेगा. प्रताप चंद्रा कहते हैं कि प्रधान के चुनाव में चुनाव चिन्ह नहीं लगाया जाता, ऐसे में यह सवाल तो उठता ही है कि बिना चुनाव चिन्ह का कोई व्यक्ति प्रधान तो बन सकता है लेकिन प्रधानमंत्री क्यों नहीं बन सकता. उन्होंने कहा कि ईवीएम से चुनाव चिन्ह हटाने और प्रत्याशी का चेहरा लगाए जाने का अभियान एक व्यापक आंदोलन की शक्ल में तब्दील हुआ. यही वजह है कि राष्ट्रीय राष्ट्रवादी पार्टी के बैनर से शुरू हुए अभियान को लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन से जोड़ा गया. इसके लिए पार्टी खत्म कर दी गई और इस आंदोलन को गैर-राजनीतिक बनाए रखने के उद्देश्य से प्रताप चंद्र ने राष्ट्रीय राष्ट्रवादी पार्टी के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और पार्टी को आंदोलन में विलीन कर दिया. पहले लोकतंत्र मुक्ति मोर्चा बना था, लेकिन उसे भी हटा कर इसे आंदोलन की शक्ल में बदला गया, क्योंकि प्रताप चंद्रा का मानना है कि संगठनात्मक ढांचा आंदोलन को लोकतांत्रिक नहीं रहने देता. इसी कारण राष्ट्रीय स्वाभिमान आंदोलन, अन्ना समर्थक गांधीवादी संघ व अन्य कई संस्थाओं-संगठनों के सहयोग से चलता हुआ लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन व्यापक शक्ल ले पाया. आंदोलन के तहत उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र समेत कई अन्य राज्यों में खूब धरना-प्रदर्शन हुए, हस्ताक्षर अभियान चला, पोस्टकार्ड अभियान चला और दिल्ली में धरना-प्रदर्शनों के साथ-साथ चुनाव आयोग से लगातार बातचीत चलती रहीं. राष्ट्रीय स्वाभिमान आंदोलन के नेता प्रदीप कुमार नागपुरकर भी लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन के अनुभवों को साझा करते हुए बताते हैं कि ईवीएम पर प्रत्याशियों की फोटो लगाने के

चुनाव लड़ने की योग्यता संविधान के अनुच्छेद-84 में निर्धारित है. संविधान के इस अनुच्छेद के अनुसार वही व्यक्ति चुनाव लड़ेगा जो भारत का नागरिक हो, मतदाता हो और बालिग हो. स्पष्ट है कि कोई दल, निकाय या गुट इस निर्धारण की परिभाषा के दायरे में नहीं आता. यही वजह है कि दलों का नाम ईवीएम पर नहीं छपता है. फिर ईवीएम पर चुनाव चिन्ह कैसे और क्यों छपने लगे? यह एक गंभीर सवाल है. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-75 में सरकार बनाने की व्यवस्था दी गई है.

टीवी पर पार्टी का चुनाव चिन्ह दिखाने के ख़िलाफ़ याचिका

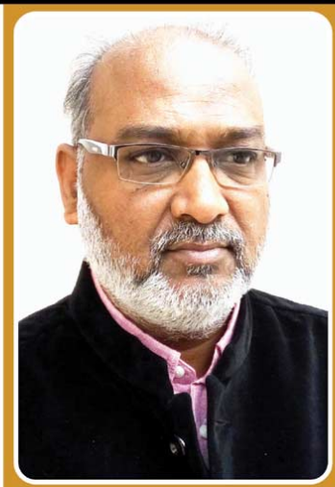

प्रताप चंद्रा

टेलीविज़न पर चलने वाले विभिन्न प्रोग्राम के तहत तमाम राजनीतिक लोगों द्वारा अपने साथ अपनी पार्टी का चुनाव चिन्ह भी प्रदर्शित किए जाने के खिलाफ इलाहाबाद हाईकोर्ट के लखनऊ बेंच में वाद दायर किया गया है. वादी प्रताप चंद्रा की अधिवक्ता डॉ. नूतन ठाकुर ने बताया कि दिल्ली हाईकोर्ट के 07 जुलाई 2016 के एक आदेश के क्रम में चुनाव आयोग ने 07 अक्टूबर 2016 को एक परिपत्र जारी कर सभी राजनीतिक दलों से किसी भी सार्वजनिक या सरकारी स्थान और सरकारी धन से अपनी पार्टी के चुनाव चिन्ह का प्रचार करने पर पूरी तरह पाबंदी लगा दी थी. प्रताप चंद्रा ने पार्टी नेताओं द्वारा टीवी चैनल के माध्यम से अपने चुनाव चिन्ह का प्रचार किए जाने को रोकने की चुनाव आयोग से मांग की थी, लेकिन आयोग ने 24 जनवरी 2017 के आदेश से इसे खारिज कर दिया था. चुनाव आयोग के उसी फैसले को कोर्ट में चुनौती दी गई है. डॉ. नूतन ठाकुर ने कहा कि किसी के निजी आवास या पार्टी कार्यालय के वे हिस्से जो टीवी चैनल के जरिए प्रसारित होते हैं, विभिन्न अधिनियमों और कोर्ट की परिभाषा में सार्वजनिक स्थान की परिभाषा के दायरे में आते हैं, लिहाजा इन पर भी चुनाव आयोग का निर्देश लागू होना चाहिए. ■

लोकतंत्र में नागरिक अपना जन-प्रतिनिधि चुनता है और उससे अपेक्षा करता है कि वह जनहित के प्रति जवाबदेह होगा. लेकिन होता इसका ठीक उल्टा है. जनता द्वारा चुना गया जन-प्रतिनिधि बाद में दल-प्रतिनिधि बन जाता है और उसकी जवाबदेही जनता के प्रति न होकर दल के प्रति हो जाती है. जनता का हित देखने के बजाय उसके लिए दल का हित प्राथमिक हो जाता है.

संविधान से खेलती रहीं चंद हस्तियां

आजादी के बाद भले ही भारत को लोकतांत्रिक देश कहा जाने लगा हो लेकिन वास्तव में चंद वीवीआईपी ही भारत के भाग्य विधाता बने बैठे हैं. पहले भी देश को एक राजा चलाता था. आज भी देश एक राजा ही चलाता है. हम आज भी गुलाम हैं. इस गुलामी का पहला प्रमाण 25 जून 1975 को समूची दुनिया ने तब देखा था, जब 19 महीनों के लिए आजाद भारत की जनता के सभी मूल अधिकारों को जब्त कर तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल के जरिए देश के लोगों को पुनः गुलाम बना दिया था. दूसरा प्रमाण 08 नवंबर 2016 की शाम तब दिखा, जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 500 व 1000 के नोट बंद करने का फरमान सुना कर पूरे देश में खलबली मचा दी. आजादी का पहला आम चुनाव 1952 में हुआ. सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश में उस समय मात्र 18.35 प्रतिशत जनता साक्षर थी. ऐसे में वोट देने के प्रथम अवसर, देश बंटवारे की उथल-पुथल, भारत में अपने-अपने राज्यों का विलय करने वाले राजाओं के रुतबों की जद्दोजहद के चलते प्रत्याशियों का नाम और क्रम संख्या पढ़ने में जनता अक्षम थी. लिहाजा, चुनाव चिन्हों का फॉर्मूला निकाला गया. अलग-अलग बैलेट बॉक्सों के ऊपर चुनाव-चिन्ह चिपकाए गए. एक जैसे मतपत्रों पर मोहर लगाकर मनपसंद चिन्ह वाले बॉक्स में डालने को कहा गया. लेकिन पहले ही चुनाव में बैलेट बॉक्सों को लूट कर विरोधियों के संघर्ष को समाप्त कर दिया गया और एक ही संगठन के प्रत्याशियों की जीत हुई. दूसरे चुनाव 1957 में भी बैलेट बॉक्सों को लूटने से रोका नहीं जा सका. तीसरे चुनाव 1962 के बाद 24 मई 1964 को नेहरू के पश्चात इंदिरा गांधी, मोरारजी देसाई, राजनारायण आदि वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं में प्रधानमंत्री बनने की होड़ पैदा हुई. विरोधाभास के बावजूद सर्वसम्मति से सहज सरल व्यक्तित्व वाले लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने. 1965 के युद्ध में पाकिस्तान को पटकनी देने के बाद लाल बहादुर शास्त्री ने अपनी संकल्प शक्ति व नेतृत्व क्षमता से पूरी दुनिया को प्रभावित किया. जिससे इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री बनने के सपने बिखरते दिखाई देने लगे. आखिरकार 11 जनवरी 1966 में ताशकंद में शास्त्री की रहस्यमय मृत्यु के बाद इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं. इंदिरा गांधी के कारनामों से कांग्रेस में फूट पड़ गई. सत्ता की ताकत का दुरुपयोग करते हुए इंदिरा गांधी ने भारत निर्वाचन आयोग के चापलूस अधिकारियों के बूते कांग्रेस (आई) नाम से नया राजनीतिक दल बना लिया और चुनाव चिन्ह के रूप में हाथ का पंजा हमेशा के लिए आरक्षित करा लिया. जबकि संविधान या जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950-51, भारत निर्वाचन आयोग नियमावली-1961 सहित किसी भी कानूनी दस्तावेज में राजनीतिक दल का उल्लेख नहीं था. इंदिरा के आपातकाल के बाद 1977 में छठवें लोकसभा चुनाव और 1980 में सातवें लोकसभा चुनाव हुए और इंदिरा गांधी प्रचंड बहुमत से जीतीं. 1984 में नौवें लोकसभा चुनाव भावनाओं के आधार पर हुए. नेहरू परिवार के उत्तराधिकारी राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने. मगर उन्होंने गुलाम लोकतंत्र की हत्या करते हुए न सिर्फ 52वां संविधान संशोधन किया, बल्कि दल-बदल विरोधी कानून भी बना डाला. सारे विधायक और सांसद पार्टी के गुलाम बनकर रह गए. 1989 में वीपी सिंह ने राजनीतिक दलों को कानूनी आधार देने के लिए जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 में संशोधन किया. 23 सितंबर 2016 को सर्वोच्च न्यायालय ने आरक्षित चुनाव चिन्हों के बहिष्कार और दलों के विरुद्ध बगावत करने के लिए भारत निर्वाचन आयोग को ईवीएम में 'नोटा' स्थापित करने का आदेश जारी कर दिया. 2011 की जनगणना के अनुसार देश की साक्षरता 74.05 प्रतिशत है. अतः अब राजनीतिक दलों के आरक्षित चुनाव चिन्हों को ईवीएम में लगाने का कोई मतलब ही नहीं रह गया है. वैसे भी दिल्ली उच्च न्यायालय ने 07 अक्टूबर 2016 को राजनीतिक दलों के आरक्षित चुनाव चिन्हों के सार्वजनिक प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिया है. अतः अब आवश्यक हो गया है कि राजनीतिक दलों के आरक्षित चुनाव चिन्हों का एकाधिकार खारिज हो और स्वच्छ छवि के प्रत्याशी को देखकर मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकें. ■

लिए चले संघर्ष ने किस-किस तरह का दौर देखा. लोकतंत्र मुक्ति आंदोलन से जुड़े अजीत नारायण कहते हैं कि राजनीतिक पार्टियां न चुनाव लड़ती हैं और न लड़ सकती हैं. इसीलिए पार्टियों का नाम कभी वोटिंग मशीन पर नहीं होता. फिर भी सरकार बनाने के लिए पार्टियां ही आगे आ जाती हैं और जन प्रतिनिधि काफी पीछे छूट जाता है. चुनाव आयोग ने पार्टियों के लिए चुनाव चिन्ह आरक्षित कर और उसे ईवीएम पर लगा कर लोकतंत्र का काफी नुकसान किया है. उल्लेखनीय है कि ईवीएम से चुनाव चिन्ह हटाकर प्रत्याशियों का चेहरा लगाए जाने की मांग के तहत देश के 258 जिलाधिकारियों के माध्यम से मुख्य चुनाव आयोग को चेतावनी पत्र दिया गया था. देशभर के 32 हजार निर्दलीय प्रतिनिधियों (चुनाव लड़कर करोड़ों वोट पाने वाले निर्दलीय नेताओं) ने चुनाव आयोग में पोस्टकार्ड पर पेटीशन लिखकर ईवीएम से चुनाव चिन्ह हटाने के लिए अपील दाखिल की थी. उत्तर प्रदेश के राज्यपाल राम नाईक ने भी मुख्य चुनाव आयुक्त नसीम जैदी को चुनाव में अवसर की समानता सुनिश्चित कराने के लिए पत्र लिखा था. अपने पत्र में राम नाईक ने कहा था कि चुनाव में कुछ प्रत्याशी अभी से अपने चुनाव चिन्ह का प्रचार कर रहे हैं जबकि निर्दलीय प्रत्याशियों को उसका चिन्ह क्या होगा, इसका पता भी नहीं रहता. लिहाजा, निर्दलियों को भी पहले से ही चुनाव चिन्ह मिले या पार्टी प्रत्याशियों का भी प्रचार रोका जाए. बहरहाल, वोटिंग मशीन पर सभी प्रत्याशियों की फोटो लगने के बाद चुनाव चिन्हों का औचित्य समाप्त हो गया है. इस आंदोलन को देशव्यापी बनाने के लिए 18 राज्यों के 3 करोड़ 70 लाख वोट पाए लगभग 36 हजार 500 निर्दलीय प्रत्याशियों से सम्पर्क कर उनका समर्थन मांगा गया था. ■

feedback@chauthiduniya.com

चुनाव प्रणाली में संशोधन की लड़ाई का मज़बूत केंद्र बन रहा सीतापुर

संजीव गुप्ता

ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध बगावत की चिंगारी फूंकने वाला जनपद सीतापुर अब आगामी चुनावों में चुनाव प्रणाली में क्रांतिकारी संशोधन की लड़ाई का गढ़ बनने जा रहा है. सीतापुर में लोकतंत्र मुक्ति मंच के बैनर से 'गांव-गांव अपनी सरकार, यूपी में निर्दल सरकार' के नारे के साथ सीतापुर की सभी सीटों पर निर्दलीय प्रत्याशी चुनाव लड़ने जा रहे हैं. सीतापुर के निर्माण की लड़ाई के लिए सीतापुर में जन मुद्दों पर सक्रिय 11 संगठनों का एक साझा मंच बना है, जिसे लोकतंत्र मुक्ति मंच नाम दिया गया है. पीएन कलकी इस संगठन के अध्यक्ष हैं. इस साझा मंच ने अपने संकल्पना पत्र के जरिए मौजूदा चुनावी प्रणाली में क्रांतिकारी संशोधनों के लिए कई महत्वपूर्ण सवाल उठाए हैं. संकल्पना पत्र के प्रवक्ता डॉ. बृजबिहारी का कहना है कि अगर जेल में बंद आदमी चुनाव लड़ेगा तो जेल में बंद लोगों को भी वोट देने का अधिकार मिलना चाहिए. वर्तमान में 165 विधायक आपराधिक मामलों में चार्ज शीटेड हैं. विधानसभा में सरकार बनाने के लिए कुल 202 विधायकों की आवश्यकता होती है. माफियाओं के मुख्यमंत्री बनने की संभावना को समाप्त किया जाना चाहिए. इसके अलावा राजनीतिक दलों को आसानी से चंदा लेने की छूट पर पूर्णतया रोक लगाई जानी चाहिए. नौवीं लोकसभा के चुनाव में विश्वनाथ प्रताप सिंह ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम कानून-1951 की धारा-29 को संशोधित कर इसे अपने फायदे के लिए लचीला बनाया था. डॉ. बृजबिहारी ने कहा कि ईवीएम से आरक्षित चुनाव चिन्हों को तत्काल हटाया जाना चाहिए. जिससे राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए गए प्रत्याशियों को मिलने वाली अनुचित बढ़त को रोका जा सके. संविधान के निर्देशानुसार चुनाव लड़ने का अधिकार केवल निर्वाचक (अनुच्छेद-326) को है. कोई भी राजनीतिक दल निर्वाचक नहीं हो सकता. फिर भी भारत निर्वाचन आयोग ने राजनीतिक दलों को चुनाव चिन्ह आरक्षित कर दिया. इन्हीं चुनाव चिन्हों को ईवीएम अथवा मतपत्रों पर आरक्षित करके समूचे लोकतंत्र को दल-तंत्र में और दल-तंत्र ने समूचे शासन-प्रणाली को दलाल-तंत्र में तब्दील कर दिया है. राजनीतिक दलों के आरक्षित चुनाव चिन्हों के सार्वजनिक प्रदर्शन पर भी प्रतिबंध लगना चाहिए. 07 अक्टूबर 2016 को दिल्ली उच्च न्यायालय ऐसा आदेश दे चुकी है. भारत निर्वाचन आयोग को ईवीएम से आरक्षित चुनाव चिन्हों को तुरन्त हटाना चाहिए, क्योंकि आयोग के पास चुनाव चिन्हों को ईवीएम पर लगाने के लिए कोई उचित दलील नहीं रह गई है. चुनाव चिन्हों का फॉर्मूला तब दिया गया था, जब सरकारी आंकड़ों में देश की साक्षरता 18.35 प्रतिशत थी. जबकि 2011 की जनगणना के अनुसार देश की साक्षरता 74.04 प्रतिशत हो गई है. ऐसे में राजनीतिक दलों के आरक्षित चुनाव चिन्हों के लगाए जाने का कोई औचित्य ही नहीं है. बृजबिहारी कहते हैं कि 26 दिसम्बर 2014 को सिविल सोसायटी द्वारा निर्वाचन आयोग के समक्ष जोरदार प्रदर्शन हुआ था, जिसके बाद ही भारत निर्वाचन आयोग ने 01 मई 2015 के बाद देश के सभी लोकसभा और विधानसभा चुनाव में प्रत्याशियों की फोटो को ईवीएम पर लगाने का आदेश जारी किया था. डॉ. बृजबिहारी कहते हैं कि वर्ष 1991 में मुख्य निर्वाचन आयुक्त बने टीएन शेषन ने अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है कि उन्होंने पदभार ग्रहण करते समय आयोग की दीवारों पर टंगी देवी-देवताओं की तस्वीरें और आयोग की कार्यशैली देख कर कहा था कि आयोग भगवान भरोसे ही चल रहा है. शेषन ने निर्वाचन आयोग की कार्यशैली में क्रांतिकारी बदलाव किया. बृजबिहारी बताते हैं कि आरक्षित चुनाव चिन्हों के बहिष्कार एवं राजनीतिक दलों के विरुद्ध निर्वाचकों को ताकतवर तरीके से खड़ा करने के उद्देश्य से ही सीतापुर से 44580 पोस्टकार्डों पर हस्तलिखित याचिकाएं सर्वोच्च न्यायालय भेजी गई थीं और 15वीं लोकसभा चुनाव के दौरान भारत निर्वाचन नियमावली- 1961 के नियम 49 (ज) को आधार बनाकर राजनीतिक दलों के आरक्षित चुनाव चिन्हों के बहिष्कार का आंदोलन प्रारंभ किया गया था. लोकसभा सीट धौरहरा में 78 निर्वाचकों ने पोलिंग बूथ पर जाकर आरक्षित चुनाव चिन्हों का बहिष्कार किया था. जबकि 2012 के विधानसभा चुनावों में जनपद सीतापुर में ही कुल 17170 निर्वाचकों ने चुनाव चिन्हों का बहिष्कार किया था. आखिरकार 23 सितंबर 2013 को सर्वोच्च न्यायालय ने संज्ञान लेते हुए 'नोटा' का विकल्प रखने का आदेश दिया था. 16वीं लोकसभा के चुनाव में धौरहरा लोकसभा सीट से 8138 तथा सीतापुर सीट से 12682 निर्वाचकों ने आरक्षित चुनाव चिन्हों का बहिष्कार करते हुए 'नोटा' का प्रयोग किया था. इंडिया अगेंस्ट करप्शन के पूर्वी भारत के प्रभारी और लोकतंत्र मुक्ति मंच के अध्यक्ष पंकज नाथ कलकी कहते हैं कि मौजूदा चुनाव प्रक्रिया राज्यपाल की अधिसूचना के खिलाफ है. दरअसल, राज्यपाल चुनाव अधिसूचना जारी कर विधानसभा गठन करने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों के निर्वाचकों से सदस्य चुनने की अपील कर रहे हैं. जबकि चुनाव आयोग राजनीतिक दलों के चुनाव चिन्ह चुनवा कर भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है. लिहाजा चुनाव राज्यपाल की अधिसूचना के गजट के खिलाफ है. ■

डॉ. बृजबिहारी

बिछड़े सभी बारी-बारी

अनंत विजय

हिंदी साहित्य में फेसबुक अब एक अनिवार्य तत्व की तरह उपस्थित है. कई साहित्यकार इस माध्यम को लेकर खासे उत्साहित रहते हैं. उनका मानना है कि फेसबुक ने नए-पुराने लेखकों को एक खुला मंच दिया, जहां आकर वो अपनी बात कर सकते हैं. इस मंच पर वो अपनी रचनाएं लिख सकते हैं, यहां अपनी राय प्रकट करने के साथ-साथ बहस-मुहाबिसे में भी हिस्सा ले सकते हैं. इस माध्यम की वकालत करनेवालों को ये अभिव्यक्ति का ऐसा मंच मानते हैं, जहां कोई बंदिश नहीं है. लेकिन एक दूसरा पक्ष भी है जो इस असीमित अधिकार को लेकर सशंकित रहता है और उनका तर्क होता है कि इससे साहित्य में अराजकता को बढ़ावा मिलता है. सोशल मीडिया के इन दो पक्षों पर ही बहस होती रहती है, लेकिन इसका एक तीसरा और दिलचस्प पक्ष भी है. फेसबुक आपको साहित्यिक समीकरणों को समझने में मदद तो करता ही है, कई बार इन समीकरणों को उघाड़कर रख देता है. हिंदी साहित्य में लेखकों के बीच समीकरण बनते बिगड़ते रहते हैं. इस बात को फेसबुक पर इनकी गतिविधियों से सहजता के साथ रेखांकित किया जा सकता है. हिंदी साहित्य का ये दौर समीकरणों का दौर है, जहां ज्यादातर लेखक आत्ममुग्धता, आत्मश्लाघा और आत्मप्रशंसा में डूबे हैं. आत्ममुग्धता, आत्मश्लाघा और आत्मप्रशंसा ही साहित्य में नए समीकरणों को जन्म देती रहती है. इस वक्त साहित्य की दुनिया में हर रोज नए ध्रुवों और गुटों का जन्म होता है और इस जन्म की सूचना आपको फेसबुक पर मिल जाती है. फेसबुक के लोकप्रिय होने के पहले तो होता ये था कि लेखकों को किसी के पक्ष में दिखने या खड़े होने के लिए लेख आदि लिखने पड़ते थे, लेकिन फेसबुक ने वो काम आसान कर दिया. अब आप लाइक या कमेंट या शेयर कर किसी के पक्ष में खड़े हो जाते हैं. कुछ सालों पहले जब महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति विभूति नारायण राय ने ज्ञानोदय पत्रिका में इंटरव्यू दिया था और उस इंटरव्यू के बाद छिनाल विवाद छिड़ा

अगर हम विचार करें तो फेसबुक ने साहित्यिक माहौल में अवश्य ही अनेक आयाम जोड़ दिए हैं, लेकिन इन आयामों से साहित्य को क्या हासिल हो रहा है? हासिल हो रहा है भगवानदास मोरवाल सरीखे वरिष्ठ लेखकों को, जो फेसबुक के मंच को अपनी किताब के प्रमोशन के लिए इस्तेमाल करते हैं. अपनी किताब के प्रमोशन का कोई भी मौका हाथ से जाने नहीं देना चाहते हैं, बल्कि मौके पैदा कर लेते हैं. फेसबुक का ये इस्तेमाल तो कोलकाता की साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त लेखिका अलका सरावगी ने भी अपनी किताब जानकीदास तेजपाल मैनशन के प्रकाशन के वक्त किया था. उन्होंने भी जमकर अपनी किताब का प्रचार किया था. तब उसको लेकर भी विवाद खड़ा करने की कोशिश की गई थी.

था तो मैत्रेयी पुष्पा ने उनके खिलाफ विरोध का झंडा बुलंद किया था. भारतीय ज्ञानपीठ के दफ्तर के बाहर मैत्रेयी पुष्पा के साथ नारे लगानेवाले साहित्यकार कालांतर में एक-एक कर उनका साथ छोड़ गए. बिछड़े सभी बारी-बारी की तर्ज पर कोई वर्धा विश्वविद्यालय से जुड़ गया तो कोई कुलपति विभूति नारायण राय से किसी और तरह से उपकृत होकर उनके साथ हो लिया. इसी तरह से युवाओं को लेकर भी साहित्य में एक लंबी बहस चली थी, जिसमें एक तरफ मैत्रेयी पुष्पा थीं और दूसरी तरफ कई लेखिकाएं. उस वक्त मैत्रेयी जी का खुलकर और लिखकर विरोध करनेवाली कई लेखिकाएं इन दिनों मैत्रेयी पुष्पा के साथ मंच साझा करती नजर आ रही हैं. मैत्रेयी पुष्पा भी उन लेखिकाओं के कार्यक्रमों में शिरकत कर रही हैं. तो इस तरह से अगर देखा जाए तो साहित्य जगत की इन जीवंतताओं का पता फेसबुक से ही चलता है. जीवंतता इस वजह से कह रहा हूं कि इसको गंभीरता से नहीं लिया जा सकता है और मनोरंजन के तौर पर इसका आनंद उठाना चाहिए क्योंकि ये मंच सबको एक्सपोज करता चलता है. एक्सपोज इस वजह से कि जोकमेंट किए जाते हैं वो बहुधा व्यक्तिगत हो जाते हैं. चंद सालों पहले एक लेखिका ने दूसरी लेखिका के खिलाफ फर्जी आईडी से कई आपत्तिजनक पोस्ट डाले थे. तब शायद उनको मालूम नहीं रहा होगा कि कंप्यूटर और इंटरनेट के कनेक्शन की वजह से पोस्ट डालने वाले की पहचान हो सकती है. उस वक्त ये हुआ भी था और साहित्य जगत में बहुत बवाल खड़ा हुआ था.

गुटबाजी के इस खुले खेल के अलावा भी फेसबुक साहित्यिक माहौल को जीवंत बनाए रखता है. फेसबुक को अगर आप नियमितता के साथ फॉलो करेंगे तो वहां आपको दो-तीन लेखकों का एक ग्रुप नजर आएगा जो हर दिन किसी ना किसी तरह का विवाद उठाने के उपक्रम में जुड़े रहते हैं. ऐसा प्रतीत होता है कि इन लेखकों का ये छोटा गुट सुबह तय कर लेता है कि आज फलां लेखक को या फलां लेखिका को घेरना है और उसपर येनकेन प्रकारेण साहित्यिक या साहित्येतर वजह से हमले करने हैं. अपनी योजना पर अमल करते हुए विवादित पोस्ट लिखे जाते हैं. उसके बाद होता है कि उन लेखकों से जुड़े छोटे-मोटे लेखक या लेखक बनने के लिए संघर्ष कर रहे कुछ लोग अति उत्साह में आकर इस या उस पक्ष पर हमलावर हो जाते हैं. साहित्य के इस खेल में बहुधा भाषिक मर्यादा की लक्ष्मणरेखा लांघी जाती है, जिससे बचा जाना चाहिए. फेसबुक पर साहित्य से जुड़े कई लोग आपको ऐसे मिल जाएंगे जो अपने मठाधीश के हर पोस्ट पर किसी ना किसी तरह की टिप्पणी अवश्य करते हैं. वाह से लेकर आह टाइप की. फेसबुक पर कोई एक मठाधीश नहीं है, यहां तो बड़े, मंझोले और छोटे मठाधीश आपको मिल जाएंगे. कई मठाधीश तो इतने असहिष्णु हैं कि वो अपना मर्यादित विरोध नहीं झेल पाते हैं और विरोध के तर्क देनेवाले को ब्लॉक कर अपना परचम लहराते रहते हैं.

अब अगर हम विचार करें तो फेसबुक ने साहित्यिक माहौल में अवश्य ही अनेक आयाम जोड़ दिए हैं, लेकिन इन आयामों से साहित्य को क्या हासिल हो रहा है? हासिल हो रहा है भगवानदास मोरवाल सरीखे वरिष्ठ लेखकों को जो फेसबुक के मंच को अपनी किताब के प्रमोशन के लिए इस्तेमाल करते हैं. अपनी किताब के प्रमोशन का कोई भी मौका हाथ से जाने नहीं देना चाहते हैं, बल्कि मौके पैदा कर लेते हैं. फेसबुक का ये इस्तेमाल तो कोलकाता की साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त लेखिका अलका सरावगी ने भी अपनी किताब जानकीदास तेजपाल मैनशन के प्रकाशन के वक्त किया था. उन्होंने भी जमकर अपनी किताब का प्रचार किया था. तब उसको लेकर भी विवाद खड़ा करने की कोशिश की गई थी. लेकिन देश में इंटरनेट के बढ़ते घनत्व के मद्देनजर फेसबुक जैसा माध्यम लेखकों को पाठकों तक पहुंचने का माध्यम बन सकता है. हालांकि इस माध्यम को चलानेवाले इसमें कारोबार की असीम संभावनाओं के मद्देनजर पोस्ट की पहुंच को सीमित कर दे रहे हैं, इसके बावजूद लेखकों को इसका इस्तेमाल करना चाहिए. लेखकनुमा विवादप्रिय लोग तो कर ही रहे हैं, जेनुइन लेखकों को भी करना चाहिए. ■

anant.ibn@gmail.com

कसौंदी

परिचय

कसौंदी का झाड़ीनुमा पादप वर्षा-ऋतु में खाली भूमि तथा कूड़े-करकट में अपने आप उग जाता है. इसका एक और भेद पाया जाता है, जिसे काली कसौंदी कहते हैं. इसकी शाखाएं कृष्णाभ बैंगनी आभा लिए होती है. मूलत्वक काली होती है, जिससे जड़ जली हुई-सी मालूम होती है. इससे कस्तूरी जैसी गंध आती है. यह मूलतः दक्षिण अमेरिका में पाया जाता है. विश्व के समस्त उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में प्राप्त होता है. भारत में भी प्रायः सर्वत्र खर-पतवार के रूप में उत्तरी-भारत में 1500 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है.

औषधीय प्रयोग मात्रा एवं विधि

❖ **नेत्र रोग-** कसौंदी के ताजे पत्र-स्वरस को सुबह-शाम 1-1 बूंद आंखों में डालने से तथा आंखों पर पत्तों को बांधने से नेत्र शूल, नेत्र लालिमा तथा नेत्र शोथ में लाभ होता है.

❖ **कर्ण रोग-** कसौंदी के पत्तों का रस अकेले ही या दूध में मिलाकर गुनगुना कर कान में 2-4 बूंद टपकाने से कान का दर्द मिटता है.

❖ **कंठ रोग-** 10 ग्राम कासमर्द पत्र में 2-4 नग काली मिर्च पीसकर लेप करने से गंडमाला के घावों का शोधन तथा रोपण होता है.

❖ **स्वरभेद-** कासमर्द, बड़ी कटेरी तथा भृंगराज के क्वाथ से पकाए हुए घृत (5 ग्राम) का सेवन करने से वातज स्वरभेद में लाभ होता है.

❖ **श्वास रोग-** 10-15 मिली कसौंदी पत्र-स्वरस में 2 चम्मच मधु मिलाकर सुबह-शाम सेवन करने से कफज ज्वर व श्वास में लाभ होता है.

❖ कसौंदी की 8 से 10 ताजी फलियों को सेंककर खाने से खांसी मिटती है.

❖ कसौंदी के बीजों का चूर्ण, छोटी पिप्पली तथा काला नमक को समभाग लेकर खरल करके 250 मिलीग्राम की गोलियां बनाकर, प्रातः या रात्रि में 1-2 गोली मुंह में रखकर चूसने से कफज कास तथा श्वास कष्ट (कठिनता से सांस आना) में लाभ होता है.

❖ प्रतिश्याय, नासा रोग तथा विशेषरूप से नासारन्ध्र अवरोध की दशा में कसौंदी-पत्र-स्वरस की एक-दो बूंदों को नाक में टपकाने से लाभ मिलता है.

❖ कसौंदी के 20 ग्राम पत्तों को 400 मिली जल में पकाकर, चतुर्थांश शेष क्वाथ बनाकर, 10-25 मिली मात्रा में पिलाने से

सूत्रकृमि तथा अन्य उदरगत कृमि नष्ट हो जाते हैं.

❖ 10 ग्राम कासमर्द की जड़ को नींबू के रस में पीसकर, उदर तथा बस्ति प्रदेश पर लेप करने से जलोदर में लाभ होता है. इसके साथ ही 2 ग्राम मूल चूर्ण को मट्ठे के साथ दिन में 1-2 बार सेवन करें.

❖ कासमर्द के 5 ग्राम पत्तों को 2-4 नग काली मिर्च के साथ पीस छानकर सुबह-शाम पिलाने से पीलिया रोग में लाभ होता है.

❖ 10 ग्राम कसौंदी मूल कल्क को समभाग गोघृत के साथ सुबह-शाम देने से श्लीपद (हाथी पांव रोग) में लाभ होता है.

❖ 20-30 मिली कसौंदी पंचांग क्वाथ को सुबह-शाम पीने से रक्त का शोधन होता है एवं चर्म रोगों में लाभ होता है.

❖ कसौंदी क्वाथ को जल में मिलाकर स्नान करने से तथा विकार ग्रस्त दैहिक स्थलों को धोने से खुजली, विसर्प, दाद, कंडू, संक्रमण इत्यादि रोग ठीक हो जाते हैं.

❖ कसौंदी के बीजों को मट्ठे के साथ पीसकर लेप करने से त्वचा रोगों में लाभ होता है.

❖ कसौंदी की जड़ को सिरके या नींबू स्वरस में पीसकर दाद पर लेप करने से लाभ होता है. जड़ को नींबू के रस में घिसकर लगाने से भी लाभ होता है.

❖ **श्वेतकुष्ठ-** कसौंदी और मूली के बीजों को समभाग लेकर दोगुनी मात्रा में गंधक के साथ पीसकर लेप करने से सफेद दाग मिटता है.

❖ कसौंदी के पत्तों को पीसकर घाव पर लेप करने से घाव तुरन्त भर जाते हैं.

❖ 10-20 मिली कसौंदी क्वाथ को दिन में 3-4 बार देने से मिर्गी, अपतंत्रक एवं आक्षेपक रोगों में लाभ होता है.

❖ कसौंदी के फूलों को मसलकर रोगी को सुंघाने से या कसौंदी के शुष्क फूलों का काढ़ा बनाकर 20 मिली मात्रा में दिन में तीन बार पिलाने से लाभ होता है.

❖ **ज्वर-** 10-20 मिली कसौंदी मूल क्वाथ को सुबह-शाम पिलाने से, मलेरिया तथा अन्य दीर्घकालिक ज्वरों में लाभ होता है. यह विशेष रूप से विषमज्वर प्रतिरोधक है.

❖ **दुर्बलता-** 20 मिली कासमर्द मूल क्वाथ को सुबह-शाम पिलाने से शारीरिक दुर्बलता व कमजोरी दूर होती है.

कुक्कुर कास- कासमर्द पत्र कल्क में मधु मिलाकर वयानुसार मात्रा में बच्चों को खिलाने से कुक्कुर कास में लाभ होता है.

❖ **कीटदंश-** मकड़ी, बर्रे, ततैया आदि विषैले कीटों के काटने पर कसौंदी के पत्रों का स्वरस तथा आवश्यकतानुसार पत्र कल्क को दंश स्थान पर लगाने से वेदना का शमन होता है.

❖ कासमर्द की मूल को पीसकर वृश्चिक दंश स्थान पर लगाने से दंशजन्य वेदना आदि प्रभावों का शमन होता है.

प्रयोज्यांगः *पत्र, बीज, त्वक्, मूल तथा पंचांग.*

मात्राः *स्वरस 6-12 मिली, चूर्ण 3-6 ग्राम. मूलक्वाथ 20-40 मिली. या चिकित्सक के परामर्शानुसार.*

आचार्य बालकृष्ण

साईं वंदना

साईं भक्ति-प्रवाह के रहस्य

मानसिक विकास पर केंद्रित रखें ध्यान

डॉ. चन्द्रभानु सतपथी

पिछले अंक से आगे

अब उसकी क्रियात्मक दयालुता प्रतिक्रियात्मक संकुचित सोच में बदल गई. उसकी स्वाभाविक परोपकारिता का विकसित गुण अवरुद्ध हो गया और उसकी चेतना के विकास की प्रक्रिया धीमी हो गई. इसमें संदेह नहीं कि सांसारिक रूप से वह व्यक्ति एक कदम आगे बढ़ा, लेकिन अपनी आध्यात्मिक चेतना के विकास में वह एक कदम पीछे ही चला गया. यदि वह दूसरों के अपरिपक्व व्यवहार के संबंध में बिना कोई टिप्पणी किए उदार दृष्टिकोण अपनाता तो वह अधिक प्रसन्नता प्राप्त करता एवं आध्यात्मिक रूप से और अधिक प्रगति करता. इससे यह शिक्षा मिलती है कि चाहे कोई भी व्यक्ति अपने को कितना ही दोषमुक्त या श्रेष्ठ माने, प्रकृति उसके सामान्य स्वभाव, जिसमें तथाकथित दोषमुक्त एवं दोष-युक्त दोनों ही पक्ष सम्मिलित हैं, को यह अधिकार/अनुमति या लाइसेंस नहीं देती कि वह दूसरों की निंदा करे. इसलिए बुद्धिमान लोगों ने कहा है कि पाप से घृणा की जा सकती है, लेकिन पापी से नहीं. बाबा ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यदि कोई किसी की निंदा करता है, तो उनकी भावनाओं को ठेस लगती है.

कुछ मनोविश्लेषणवादियों का यह मत है कि जिन लोगों में मानसिक उदारता नहीं होती और जो अपने को दोषमुक्त एवं आदर्श मानते हैं, वे सबसे अधिक मानसिक कष्ट झेलते हैं. जिन लोगों के संपर्क में वे आते हैं, उनके चरित्र की दोषपूर्ण आदतों/कमियों से समझौता करने में उन्हें कठिनाई होती है. पर ऐसे लोग बहुत सृजनात्मक हो सकते हैं क्योंकि वे हर कार्य को अत्यंत उत्कृष्ट रूप में करना चाहते हैं. चूंकि वह समाज में दूसरों के साथ सामंजस्य नहीं रख पाते, अतः वे बहुत दुख भी भोगते हैं. मनुष्य की यह मानसिक समस्या केवल इसी वर्ग तक सीमित नहीं है. न्यूनाधिक रूप में किसी सीमा तक यह प्रायः सभी में पाई जाती है. इस विचित्र मनुष्य की मूल समस्या यह है कि वह स्वयं को ब्रह्मांड का केन्द्र-बिन्दु मानता है, उस छोटे से ब्रह्मांड का जो कि उसने अपने चारों ओर बना रखा है. इसलिए वह चाहता है कि उसके आसपास का सब कुछ उसके उस छोटे ब्रह्मांड की आवश्यकताओं के अनुरूप हो. वह यह मानने को तैयार नहीं है कि इतने विशाल ब्रह्मांडों में, जिसमें करोड़ों-करोड़ों रूप निरंतर बदल रहे हैं, उसमें मनुष्य

का अस्तित्व एक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कण के समान है. हमारे जटिल सांसारिक अस्तित्व की सामाजिक संरचना में ये करोड़ों छोटे ब्रह्मांड आस-पास हैं, जो कि परस्पर टकरा रहे हैं. अपने कण के बराबर व्यक्तित्वाद या अहंकार की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से वे एक-दूसरे को अलग खींच रहे हैं. सद्गुरुओं ने सदैव इस जटिल समस्या का सरल समाधान देने का प्रयास किया है.

बाबा ने जो सुझाया, वह श्री साईं सच्चरित्र में सार-रूप में अंकित है. यदि हम उसका अनुपालन करें तो हमारी सोच/वैचारिक-प्रक्रिया/मनोभावों में गुणात्मक बदलाव होगा. हम अपने इर्द-गिर्द के संसार को स्पष्टतर रूप में देख सकेंगे और साथ ही हमने अपना जो ब्रह्मांड निर्मित कर रखा है, उसकी भी छोटी-छोटी समस्याओं को समझ सकेंगे. यह न केवल स्वयं के लिए लाभकारी होगा, बल्कि जो लोग हमारे आस-पास हैं, उनके लिए भी यह अच्छा होगा. इसलिए जब भी हम श्री साईं सच्चरित्र या बाबा से संबंधित अन्य कोई पुस्तक पढ़ें, तो हम सचेत रूप से अपने मानसिक विकास पर ध्यान केन्द्रित रखें. इसी के विषय में बाबा अपने भक्तों को बार-बार समझाते थे और अपने व्यवहार द्वारा भी उन्होंने इसी का उदाहरण दिया है. ■

चौथी दुनिया स्पूरो feedback@chauthiduniya.com

साईं भक्तों! आप भी चौथी दुनिया को साईं से जुड़ा लेख या संस्मरण भेज सकते हैं. मसलन, साईं से आप कब और कैसे जुड़े, साईं की कृपा आपको कब से मिलनी शुरू हुई. आप साईं को क्यों पूजते हैं. कैसे बनें आप साईं भक्त. साईं बाबा का जीवन और चरित्र आपको किस तरह से प्रेरित करता है? साईं बाबा के बारे में अनेक किंवदंतियां हैं. क्या आपके पास भी कुछ कहने के लिए है? अगर हां, तो केवल 500 शब्दों में अपनी बात कहने की कोशिश करें और नीचे दिए गए पते पर भेजें.

फेडरर और सेरेना अब भी बेजोड़

सैयद मोहम्मद अब्बास

टेनिस में एक बार फिर रोजर फेडरर और सेरेना विलियम्स का जादू देखने को मिल रहा है. विश्व टेनिस में फेडरर और सेरेना कोई नया नाम नहीं है. एक वक्त था जब फेडरर और सेरेना की तूती पूरे विश्व टेनिस में बोलती थी, लेकिन बढ़ती उम्र का असर दोनों के खेल पर दिखने लगा था. लोगों ने मान लिया था कि इनका दौर अब थम चुका है. दोनों खिलाड़ियों ने ऑस्ट्रेलियाई ओपन का खिताब जीतकर अपने आलोचकों का मुंह बंद कर दिया है. विश्व टेनिस में हाल में जोकोविच का नाम हमेशा सुर्खियों में रहता है. उनके दमदार खेल की वजह से लोगों में उनका क्रेज देखने ही बनता है, लेकिन उनको लगातार किसी खिलाड़ी ने चुनौती दी है, तो वह नडाल और फेडरर हैं. नडाल के करियर पर चोट की मार देखी जा सकती है, जबकि फेडरर अब थोड़े उम्रदराज हो चुके हैं. फेडरर भले ही बूढ़े हो चुके हों, लेकिन अनुभव के मामले में दोनों खिलाड़ियों से काफी आगे हैं. टेनिस में हमेशा किसी न किसी खिलाड़ी का लंबा युग देखा जा सकता है. हर युग में एक खिलाड़ी अपना करिश्माई खेल दिखाकर लोगों के दिलों पर राज करता है. किसी जमाने में बोरिस बेकर का सिक्का चलता था, तो बाद के दौर में अगासी जैसे सितारे भी खूब चमके. इतना ही नहीं, पीट सम्प्रास ने अपने दमदार टेनिस के बदौलत दुनिया जीतने का हौसला दिखाया. मौजूदा दौर में फेडरर का करियर ढलान पर है, जबकि नडाल और जोकोविच लगातार नया प्रतिमान स्थापित कर रहे हैं. ऐसे में टेनिस के जानकारों ने फेडरर को संन्यास लेने की सलाह तक दे डाली, लेकिन फेडरर लगातार हर बड़े टूर्नामेंट में उसी अंदाज में कोर्ट पर उतरते हैं, जैसे पहले खेलते थे. फर्क केवल इतना है कि उस समय वह टेनिस की दुनिया में युवा माने जाते थे, लेकिन अब ऐसा नहीं है. वह नडाल और जोकोविच जैसे खिलाड़ियों के आगे टिक नहीं पाते हैं. कभी सेमीफाइनल में उनकी गाड़ी इन खिलाड़ियों के आगे रुक जाती है तो कभी गैर वरीयता प्राप्त खिलाड़ी भी फेडरर को चौंकाने से चूकता नहीं है. खैर यह बात अब थोड़ी पुरानी लग रही है, क्योंकि रोजर फेडरर ने साल 2017 की शानदार शुरुआत की है. उन्होंने ऑस्ट्रेलियाई ओपन का खिताब जीतकर सबको चौंका दिया है. दूसरी ओर महिला खिलाड़ियों की बात करें तो सेरेना विलियम्स का जलवा टेनिस में देखते ही बनता है. चोटों और खराब फिटनेस से पार पाने वाली सेरेना एक बार फिर मैदान में विरोधियों के हौसले पस्त कर रही है. शारापोवा के डोपिंग में फंसने के बाद लगे बैन के बाद शायद ही कोई खिलाड़ी होगा, जो सेरेना को टेनिस कोर्ट पर चुनौती दे. दरअसल सेरेना और शारापोवा के बीच हमेशा टेनिस कोर्ट पर रोचक जंग देखने को मिलती थी. यह बात भी सत्य है कि दोनों खिलाड़ी अपने दौर के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी माने जाते हैं. सेरेना जैसे-जैसे उम्रदराज हो रही हैं, वैसे-वैसे टेनिस कोर्ट पर उनकी क्षमता देखने लायक होती जा रही है. सेरेना ने ऑस्ट्रेलियाई ओपन जीतकर साबित किया कि अब भी उनमें काफी दम है.

ख़ैर यह बात अब थोड़ी पुरानी लग रही है, क्योंकि रोजर फेडरर ने साल 2017 की शानदार शुरुआत की है. उन्होंने ऑस्ट्रेलियाई ओपन का खिताब जीतकर सबको चौंका दिया है. दूसरी ओर महिला खिलाड़ियों की बात करें तो सेरेना विलियम्स का जलवा टेनिस में देखते ही बनता है. चोटों और खराब फिटनेस से पार पाने वाली सेरेना एक बार फिर मैदान में विरोधियों के हौसले पस्त कर रही है. शारापोवा के डोपिंग में फंसने के बाद लगे बैन के बाद शायद ही कोई खिलाड़ी होगा, जो सेरेना को टेनिस कोर्ट पर चुनौती दे. दरअसल सेरेना और शारापोवा के बीच हमेशा टेनिस कोर्ट पर रोचक जंग देखने को मिलती थी. यह बात भी सत्य है कि दोनों खिलाड़ी अपने दौर के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी माने जाते हैं.

विश्व टेनिस में पुरुष खिलाड़ियों की बात की जाये तो फेडरर लम्बे समय से अपने दमदार खेल के लिए जाने जाते रहे हैं, लेकिन बाद के दौर में नडाल और जोकोविच के आने के बाद उनका ग्राफ काफी नीचे आया है. उनका कद भी गिरा है क्योंकि नडाल और जोकोविच लगातार फेडरर को हराने में कामयाब रहे हैं. लेकिन 2017 के शुरुआत में यह तस्वीर बदली हुई नजर आ रही है. पूर्व नम्बर वन खिलाड़ी रोजर फेडरर ने एक बार फिर पुराने अंदाज में टेनिस खेलते हुए रफाल नडाल को ऑस्ट्रेलियाई टेनिस चैम्पियनशिप में 6-4, 3-6, 6-1, 3-6, 6-3 से हराकर अपनी हनक दिखायी है. रोजर फेडरर के लिए यह जीत इसलिए खास है, क्योंकि उन्होंने पांच साल के बाद कोई ग्रैंड स्लैम जीता है. इस दौरान उन्होंने कई बार बड़ी प्रतियोगिता में शानदार प्रदर्शन किया, लेकिन खिताब जीतने में नाकाम रहे थे. इतना ही नहीं, इस दौरान उन्हें नडाल और जोकोविच जैसे खिलाड़ियों से कड़ी टक्कर भी मिलती थी. इससे पूर्व 2012 में विम्बलडन खिताब जीता था. इन पांच सालों में फेडरर के संन्यास की खबर भी जोर पकड़ी थी, लेकिन बाद में यह अफवाह साबित हुई. फेडरर आज भी उसी लगन के साथ कोर्ट पर उतर रहे हैं जैसे वह पहले उतरते थे. एक दौर था, जब फेडरर के आगे कई बड़े दिग्गज धड़ाम हो जाते थे, लेकिन बाद के दौर में फेडरर के सामने नडाल जैसे तेज खेलने वाले खिलाड़ी मजबूत बाधा बनके सामने आये. नडाल और फेडरर इससे पहले आठ बार ग्रैंड स्लैम प्रतियोगिता में आमने सामने आ चुके हैं. इतना ही नहीं नडाल अक्सर फेडरर पर भारी पड़े हैं. नौवीं बार फाइनल में एक बार फिर फेडरर का सामना नडाल से था, लेकिन इस बार बाजी फेडरर ने मारी. इस तरह से ग्रैंड स्लैम में छह बार नडाल ने खिताब जीता है, जबकि तीन बार फेडरर खिताब जीतने में कामयाब रहे हैं. फेडरर ने इस तरह से 18वां ग्रैंड स्लैम जीतने का कारनामा किया है. साल 2010 में ऑस्ट्रेलियाई ओपन का खिताब जीतने वाले फेडरर अभी और खिताब जीत सकते हैं, लेकिन उनकी फिटनेस और बढ़ती हुई उम्र बाधा बन सकती है. दूसरी ओर नडाल और जोकोविच दोनों ही इस समय प्रचंड फॉर्म में चल रहे हैं. फेडरर जब करियर के सर्वश्रेष्ठ दौर में थे तो वह रिकॉर्ड 302 हफ्ते नम्बर वन की कुर्सी पर काबिज रहे हैं. हालांकि इस दौर में उन्हें नडाल, जोकोविच के अलावा एंडी मरे जैसे खिलाड़ियों ने भी कड़ी चुनौती पेश की. रोजर फेडरर ने ऑस्ट्रेलियाई ओपन 2004, 2006, 2007, 2010, 20017 में जीता है, जबकि 2009 में फ्रेंच ओपन, विम्बलडन में तो उनका प्रदर्शन बेहद शानदार रहा है. उन्होंने इस चैम्पियनशिप में 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2012 में खिताब जीतकर तहलका मचा दिया था. यूएस ओपन में उनका प्रदर्शन काबिले तारीफ रहा है. वे 2004, 2005, 2006, 2007, 2008 में जीतने में कामयाब रहे. दूसरी ओर नडाल और जोकोविच आज के दौर के शानदार खिलाड़ी माने जाते हैं. दोनों का खेल गजब का है. ऐसे में फेडरर कैसे इनका मुकाबला करते हैं, यह तो आने वाले समय बताएगा.

दूसरी ओर महिला खिलाड़ियों में सेरेना का नाम अब भी बुलंदियों पर है. दरअसल सेरेना भी फेडरर की तरह 35 साल की हो चुकी, लेकिन ग्रैंड स्लैम जैसी प्रतियोगिता में उनको रोकना अब किसी खिलाड़ी के बस में नहीं दिख रहा है. उनका शक्तिशाली खेल अब दुनिया के कई खिलाड़ियों के लिए सर दर्द साबित हो रहा है. हालांकि यह बात भी सत्य है कि मारिया शारापोवा से उन्हें कड़ी चुनौती मिलती रही है. शारापोवा डोप के डंक में फंसने के बाद बैन की मार झेल रही हैं. सेरेना अपनी बढ़ती हुई उम्र के बावजूद अपने खेल में लगातार अव्वल साबित हो रही हैं. उनका प्रदर्शन इस बात का गवाह है कि अभी वे रुकने वाली नहीं हैं. कोर्ट पर उनकी चपलता देखते ही बनती है. सेरेना ने अब तक 23 ग्रैंड स्लैम प्रतियोगिता अपने नाम की है. उन्होंने ऑस्ट्रेलियाई ओपन 2003, 2005, 2007, 2009, 2010, 2015, 2017 में जीतकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया, जबकि फ्रेंच ओपन वह तीन बार जीत चुकी हैं. साल 2002, 2013, 2015 में जीतने में सफल रही हैं. दूसरी ओर विम्बलडन में उनका प्रदर्शन और निखर कर सामने आया है. उन्होंने यह प्रतियोगिता 2002, 2003, 2009, 2010, 2012, 2015, 2016 में अपने नाम किया, जबकि यूएस ओपन में 1999, 2002, 2008, 2012, 2013 और 2014 में इस खिताब पर कब्जा किया है. कुल मिलाकर देखा जाये तो फेडरर और सेरेना दोनों ही कमाल के खिलाड़ी हैं. अब यह देखना रोचक है कि दोनों भविष्य में और कितने-कितने खिताब अपनी झोली में डालते हैं. ■

कोहली की सेना में बहुत है दम

भारतीय क्रिकेट टीम टेस्ट क्रिकेट में लगातार नया प्रतिमान स्थापित कर रही है. हाल के दिनों में टीम इंडिया ने कई रिकॉर्ड बनाये हैं. टीम इंडिया की बल्लेबाजी लगातार चमक रही है. दरअसल टीम के पास अब मजबूत बल्लेबाजी क्रम है. टेस्ट क्रिकेट में पहले भारत सचिन तेंदुलकर जैसे स्टार खिलाड़ियों की बदौलत चलता था. सचिन ने अपने समय में एक महान खिलाड़ी के रूप में विश्व क्रिकेट में अपनी अलग पहचान बनायी. लगातार रिकार्डों का अम्बार लगाने के बाद उन्हें रिकॉर्ड पुरुष तक कहा जाने लगा. इतना ही नहीं, सचिन ने अपने साथ राहुल द्रविड़, लक्ष्मण और सौरभ गांगुली जैसे क्रिकेटरों को खूब निखारा. 90 के दशक में अजहर, सिंधु, संजय मांजरेकर व अजय जडेजा जैसे धाकड़ बल्लेबाज खूब नाम कमाते थे, लेकिन इसके बाद सचिन, द्रविड़, लक्ष्मण और दादा का राज चलता था. क्रिकेट के जानकारों की मानें तो उस वक्त टीम इंडिया को भले ही अनुभवी माना जाता हो लेकिन वर्तमान टीम इससे एक कदम आगे दिख रही है. टीम के पास बल्लेबाजों की लम्बी कतार देखी जा सकती है, जबकि गेंदबाजी में भी उसके पास कई प्रतिभावान खिलाड़ियों का जमावड़ा है. इसके साथ ही टीम के पास इस समय तेज गेंदबाजों से लेकर स्पिनरों का भी अच्छा विकल्प देखा जा सकता है. बल्लेबाजी में एक समय वीरू ने भी खूब टीम इंडिया का मान बढ़ाया था, लेकिन मौजूदा दौर में कई ऐसे धाकड़ बल्लेबाज सामने आ रहे हैं जो विश्व क्रिकेट में आने वाले समय में टीम इंडिया को और बुलन्दियों पर पहुंचा सकते हैं. टीम की लगातार कामयाबी पर इंग्लैंड के कप्तान ने भी मौजूदा टीम को भारतीय क्रिकेट की सर्वश्रेष्ठ टीम बताया है. कुक के अनुसार, माही की टीम और विराट की सेना में जमीन आसमान का अंतर देखा जा सकता है. भले ही उस दौर की टीम लम्बा-चौड़ा अनुभव रखती हो, लेकिन विराट की युवा सेना करिश्मा करने का दम रखती है. यह बात भी सत्य है कि टीम इंडिया अपनी धरती पर सबसे खतरनाक मानी जाती है. हालांकि कुछ मौकों पर टीम इंडिया ढेर होती हुई दिखी है. टीम के पास विश्व क्रिकेट का नम्बर वन गेंदबाज आर अश्विन है, तो वहीं जडेजा की फिरकी भी अब दुनिया के धाकड़ बल्लेबाजों के लिए खतरा बन गई है. अगर विकेट से मदद मिली तो अश्विन और जडेजा बल्लेबाजों पर काल बनकर टूटते हैं. हाल में खत्म हुई इंग्लैंड के खिलाफ खेली गई सीरीज इसका ताजा उदाहरण है. टीम इंडिया ने इंग्लैंड से सीरीज जीतकर पुराना हिसाब भी चुकता कर लिया. टीम इंडिया के पास मुरली विजय जैसा ओपनर मौजूद है, जो विकेट के हिसाब से बल्लेबाजी करने की महारथ रखता है, जबकि केएल राहुल भले ही अभी नये हों, लेकिन उनके क्रिकेटीय गुण देखकर लग रहा है कि वह लम्बी रेस के घोड़े साबित हो सकते हैं. तीन नम्बर पर पुजारा वही काम कर रहे हैं, जो कई सालों से राहुल द्रविड़ किया करते थे यानी विकेट पर टिकने का हुनर दिखाना टेस्ट में क्रिकेट में अहम माना जाता है. इसके विराट पारी को संवारने का काम बखूबी करते हैं. इसके अलावा करुण नायर जैसी प्रतिभा भी टीम इंडिया में चार चांद लगा रही है.

बात अगर गेंदबाजी की जाए तो खासकर स्पिन विभाग लम्बे अरसे बाद मजबूती के साथ आगे आया है. अतीत में जंबो यानी अनिल कुंबले टेस्ट क्रिकेट में ऐसे गेंदबाज थे, जो अपने दम पर टीम को जिताने का माद्दा रखते थे. उनकी गेंदबाजी के बदौलत अजहर ने अपनी कप्तानी में कई यादगार जीत हासिल की. उनके बाद हरभजन सिंह ने अपनी फिरकी की बदौलत दुनिया के कई खिलाड़ियों को नचाया है. अब टीम इंडिया में अश्विन और जडेजा के फिरकी की चर्चा हो रही है. आलम यह है कि दोनों में विकेट लेने की होड़ मची है. इंग्लैंड के खिलाफ दोनों ही खिलाड़ियों का प्रदर्शन चरम पर था. जडेजा कुछ समय पहले बुरे फॉर्म से गुजर रहे थे. इतना ही नहीं, क्रिकेट के जानकारों ने उनके टीम में होने पर भी सवाल लगा दिया था, लेकिन उन्होंने अपने ऑलराउंडर खेल की बदौलत आलोचकों का मुंह बंद कर दिया. दूसरी ओर आर अश्विन महज पांच साल के अंदर टीम इंडिया के सबसे बड़े मैच विजेता के रूप में सामने आये हैं. उनकी गेंदबाजी इस बात की गवाह है कि वह इस समय दुनिया के सर्वश्रेष्ठ स्पिनर हैं. लगातार विकेट लेने की भूख अश्विन में देखी जा सकती है. आईसीसी ने उन्हें क्रिकेटर ऑफ द ईयर के लिए चुना. अवॉर्ड जीतने के बाद उन्होंने कहा कि उनकी इस कामयाबी के पीछे परिवार और टीम का बहुत बड़ा योगदान है. उन्होंने यह अवॉर्ड दुनिया के कई बड़े क्रिकेटरों को पीछे छोड़ कर जीता है. अश्विन को साल के बेहतरीन टेस्ट क्रिकेटर के खिताब से भी नवाजा गया. अश्विन ने साल सितम्बर 2015 से लेकर सितम्बर 2016 तक आठ टेस्ट मैचों में 48 विकेट चटकाये, जबकि बल्लेबाजी में उनका बल्ला रनों की बारिश करता दिखा. उन्होंने आठ टेस्ट में 42 के औसत से 336 रन बनाये हैं. इसी दौरान टी 20 में अपनी गेंदबाजी का खूब जादू चलाया. आर अश्विन अब टेस्ट क्रिकेट में नम्बर वन गेंदबाज हैं, जबकि ऑलरांडर की लिस्ट में शीर्ष पर हैं.

कोहली की टीम में रहाणे जैसे पराक्रमी क्रिकेटर मौजूद हैं, जो विदेशी जमीन पर रन बनाने का हौसला दिखाते हैं. विराट की सेना में एक बात और खास है ऑलराउंडर बनने की होड़. जहां अश्विन ने बतौर ऑलराउंडर अपनी टीम को नया आयाम दिया, तो अब जयंत यादव भी अपनी गेंदबाजी के साथ-साथ बल्लेबाजी में भी चमक रहे हैं. नौवें नम्बर पर बल्लेबाजी करते हुए शतक जड़कर उन्होंने अपनी अलग पहचान बना डाली है. केवल 45 प्रथम श्रेणी क्रिकेट का अनुभव रखने वाले इस खिलाड़ी ने ऑलराउंडर बनने का हौसला दिखाया है. उनकी बल्लेबाजी को लेकर वीरू ने भी खूब तारीफ की है. इतना ही नहीं जडेजा और अश्विन को अब बतौर ऑलराउंडर टीम में शामिल किया जा रहा है.

दूसरी ओर टीम इंडिया में सर रवींद्र जडेजा के नाम से प्रसिद्ध जडेजा भी लगातार टेस्ट क्रिकेट में अव्वल साबित हो रहे हैं. अश्विन और जडेजा की जोड़ी बल्लेबाजों के लिए अब कब्रगाह साबित हो रही है. जडेजा की बलखाती हुई गेंदें मेहमान टीम के बल्लेबाजों की जमकर खबर ले रही हैं. विराट अगर लगातार टेस्ट क्रिकेट में रिकॉर्ड बना रहे हैं तो उसमें जडेजा का भी खास योगदान रहा है. मौका पड़ने पर जडेजा बल्लेबाजी भी कर लेते हैं, जबकि गेंदबाजी में उनकी कोई सानी नहीं है. हालांकि यह बात भी कही जा रही है कि दोनों ही गेंदबाज केवल भारतीय जमीन पर कमाल करते हैं लेकिन जडेजा ने साफ किया है कि टीम इंडिया अब विदेशी धरती पर जीतने का दम भर सकती है. जडेजा ने इंग्लैंड के खिलाफ अंतिम टेस्ट में कमाल की गेंदबाजी करते हुए सात विकेट चटकाकर मेहमान टीम की कमर तोड़ दी.

भारतीय टीम की बल्लेबाजी की बात की जाए, तो इसमें कई खिलाड़ी जानदार बल्लेबाजी की बदौलत विश्व क्रिकेट में अपनी अलग पहचान बना रहे हैं. उनमें मुरली विजय अब शानदार ओपनर के तौर पर सामने आ चुके हैं. उनके जोड़ीदार को लेकर भले ही तमाम बातें की जाए, लेकिन केएल राहुल जैसे खिलाड़ी भी बतौर ओपनर अपनी टीम में जगह बनाते दिख रहे हैं. उन्होंने बेहद कम समय में टेस्ट क्रिकेट में अपनी बल्लेबाजी का लोहा मनवाया है. बतौर ओपनर उन्हें टीम में शामिल किया गया है. उनका बल्ला इस बात का गवाह है कि आने वाले दिनों में वह अपनी जगह को और मजबूती दे सकते हैं. पुजारा भी तीन नम्बर पर शानदार बल्लेबाजी कर रहे हैं. पुजारा विकेट पर रुकने का दम रखते हैं, ताकि अन्य बल्लेबाजों पर दबाव कम किया जा सके. कोहली की टीम में रहाणे जैसे पराक्रमी क्रिकेटर मौजूद हैं, जो विदेशी जमीन पर रन बनाने का हौसला दिखाते हैं. विराट की सेना में एक बात और खास है ऑलराउंडर बनने की होड़. जहां अश्विन ने बतौर ऑलराउंडर अपनी टीम को नया आयाम दिया, तो अब जयंत यादव भी अपनी गेंदबाजी के साथ-साथ बल्लेबाजी में भी चमक रहे हैं. नौवें नम्बर पर बल्लेबाजी करते हुए शतक जड़कर उन्होंने अपनी अलग पहचान बना डाली है. केवल 45 प्रथम श्रेणी क्रिकेट का अनुभव रखने वाले इस खिलाड़ी ने ऑलराउंडर बनने का हौसला दिखाया है. उनकी बल्लेबाजी को लेकर वीरू ने भी खूब तारीफ की है. इतना ही नहीं जडेजा और अश्विन को अब बतौर ऑलराउंडर टीम में शामिल किया जा रहा है. दोनों खिलाड़ी अपनी स्पिन से दुनिया के कई धाकड़ बल्लेबाजों को चारों-खाने चित करने में माहिर साबित हो रहे हैं. टीम को जब भी बल्लेबाजी की जरूरत होती है, तब उनका बल्ला भी रनों का अम्बार लगा देता है. देखा जाये तो हाल फिलहाल जब भी टीम इंडिया मुसीबत में दिखी तो उसे दोनों ही खिलाड़ियों ने अपने ऑलराउंडर खेल की बदौलत टीम को मजबूत स्थिति में पहुंचाने का दम दिखाया. दूसरी ओर करुण नायर ने तिहरा शतक जड़कर अपनी बल्लेबाजी की विश्व क्रिकेट में एक पहचान बना डाली. इस पारी के बाद करुण रातों-रात स्टार बन गये. ऐसे में कोहली की टीम अन्य टीमों से बेहतर कही जा सकती है. भारतीय क्रिकेट के लिए यह एक नया दौर साबित हो रहा है. ■

feedback@chauthiduniya.com

बाल अधिकारों की निराशाजनक स्थितिः प्रियंका चोपड़ा

बॉलीवुड से हॉलीवुड में कदम रखने वाली अभिनेत्री प्रियंका चोपड़ा ने दुनिया में बाल अधिकारों की निराशाजनक स्थिति पर दुनिया का ध्यान खींचने के लिए एक भावनात्मक अपील की है. प्रियंका ने ट्विटर पर कुछ समय पहले एक छोटा वीडियो पोस्ट किया है, जिसमें दुनिया भर के संकटग्रस्त बच्चों पर प्रकाश डाला गया है. प्रियंका ने इस वीडियो का कैप्शन आई नीड यू लिखा है.

प्रियंका ने कहा, दुनिया भर के 4 करोड़ 80 लाख बच्चे संघर्ष और आपदा का सामना कर रहे हैं. उन्हें आपकी जरूरत है. प्रियंका ने अपने प्रशंसकों और फॉलोवर्स को यूनिसेफ के बच्चों के लिए मानवीय कार्य योजना (ह्यूमेनिटेरियन एक्शन प्लान फॉर चिल्ड्रन) 2017 के लिंक पर जाने को कहा है. प्रियंका को बाल अधिकारों को प्रोत्साहित करने के लिए हाल में यूनिसेफ की ग्लोबल गुडविल एंबेसडर घोषित किया गया है.

अक्षय को तो नहीं पर शाहरुख़ को कड़ी टक्कर दे गए ऋतिक

काबिल ने बनाया ऋतिक को काबिल

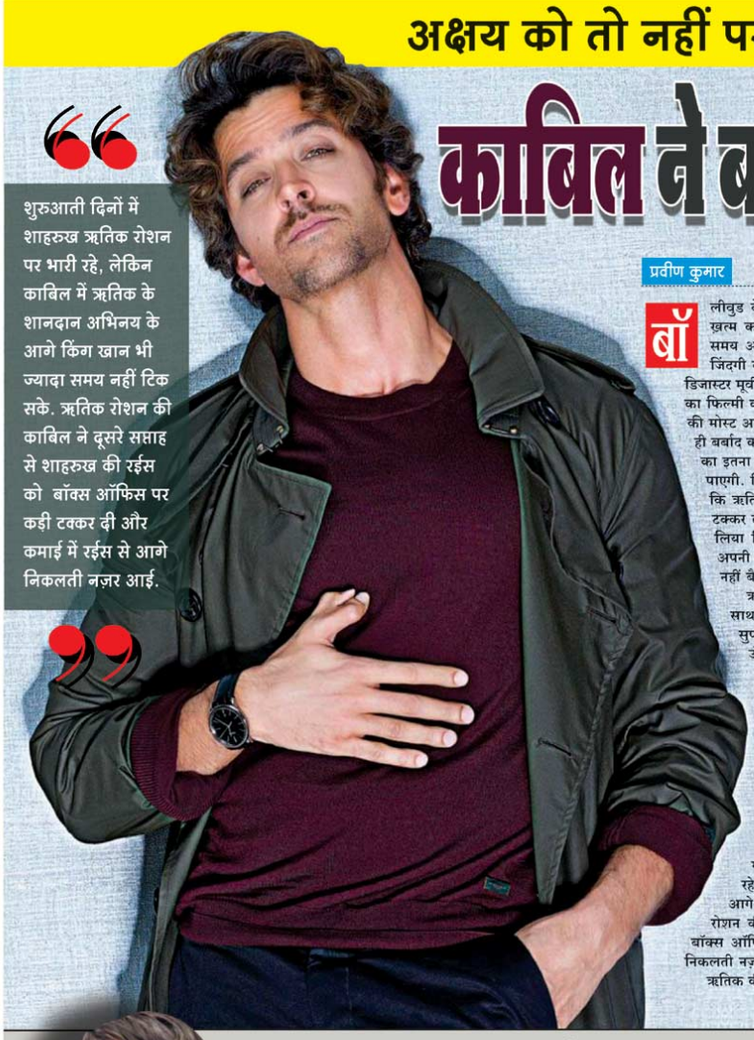

शुरुआती दिनों में शाहरुख़ ऋतिक रोशन पर भारी रहे, लेकिन काबिल में ऋतिक के शानदान अभिनय के आगे किंग खान भी ज्यादा समय नहीं टिक सके. ऋतिक रोशन की काबिल ने दूसरे सप्ताह से शाहरुख़ की रईस को बॉक्स ऑफिस पर कड़ी टक्कर दी और कमाई में रईस से आगे निकलती नज़र आई.

प्रवीण कुमार
feedback@chauthiduniya.com

बॉलीवुड के सुपर हीरो ऋतिक रोशन का बुरा वक़्त काबिल ने ख़त्म कर दिया है. जी हां, कुछ समय से ऋतिक रोशन का समय अच्छा नहीं चल रहा था. बात चाहे उनकी पारिवारिक जिंदगी की हो, कंगना से झगड़े की या फिर उनके करियर की डिजास्टर मूवी मोहनजोदाड़ो की. इन सभी चीजों की वजह से ऋतिक का फिल्मी करियर लगातार नीचे गिर रहा था. पिछले साल ऋतिक की मोस्ट अवेटिंग फिल्म मोहनजोदाड़ो ने तो उनका फिल्मी करियर ही बर्बाद कर दिया था. किसी को यह विश्वास नहीं था कि फिल्म का इतना बुरा हाल होगा कि वह अपना बजट तक नहीं निकाल पाएगी. फिल्म के डिजास्टर होने के बाद से ऐसा लगने लगा था कि ऋतिक अब शायद ही बॉक्स ऑफिस पर किसी से कभी टक्कर ले पाएंगे. लेकिन ऋतिक तो ऋतिक ही हैं. उन्होंने ठान लिया कि जब तक वे बिना धूम मचाए बॉक्स ऑफिस पर अपनी काबिलियत साबित नहीं कर देते हैं, तब तक वे चैन से नहीं बैठने वाले हैं.

ऋतिक ने साल 2017 की शुरुआत फिल्म काबिल के साथ अपने अंदाज में धूम मचाकर की. फिल्म काबिल सुपरहिट रही और एक बार फिर ऋतिक का फिल्मी ग्राफ ऊंचाई की ओर जाता दिख रहा है. साल की शुरुआत में ही ऋतिक की टक्कर बॉक्स ऑफिस पर किंग खान की रईस से हो गई. हालांकि इन दोनों की फिल्म का बॉक्स ऑफिस पर टकराना कोई नई बात नहीं है. इससे पहले भी उन दोनों के बीच कई बार फिल्म की डेट को लेकर क्लेश हो चुका है.

इस बार भी यही देखने को मिला. हालांकि दोनों पक्षों ने काबिल और रईस के टकराव को बॉक्स ऑफिस पर रोकने की पूरी कोशिश की, लेकिन ऐसा नहीं हो सका. बॉक्स ऑफिस पर रईस और काबिल दोनों फिल्में रिलीज हुईं और दोनों ने सफलता के झंडे गाड़े. शुरुआती दिनों में शाहरुख़, ऋतिक रोशन पर भारी रहे, लेकिन काबिल में ऋतिक के शानदान अभिनय के आगे किंग खान भी ज्यादा समय नहीं टिक सके. ऋतिक रोशन की काबिल ने दूसरे सप्ताह से शाहरुख़ की रईस को बॉक्स ऑफिस पर कड़ी टक्कर दी और कमाई में रईस से आगे निकलती नज़र आई.

ऋतिक की भारत ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी फिल्म को लेकर खूब तारीफ की गई. यहां तक कि पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान के लोगों ने भी ऋतिक के अभिनय की जमकर तारीफ की. काबिल ने बॉक्स ऑफिस पर लगातार अच्छा प्रदर्शन करते हुए भारत में 100 करोड़ रुपए से ज्यादा का व्यापार कर लिया और यह फिल्म ऋतिक के करियर की चौथी 100 करोड़ी फिल्म बन गई. इससे पहले 100 करोड़ के क्लब में अग्निपथ, कृष-3 और बैंग-बैंग शामिल हैं. काबिल के बाद अब यह तो मानना पड़ेगा कि ऋतिक में वाकई काफी दमखम है, वरना एक फिल्म की बर्बादी के बाद अगली बार बॉक्स ऑफिस पर टकराने की हिमाकत भला कौन कर सकता है. ऋतिक ने अपने 16 साल के करियर में 5 ब्लॉकबस्टर फिल्में दी हैं जो हर किसी के लिए आसान नहीं है. ऋतिक के अब तक के फिल्मी करियर को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनकी काबिलियत ही 'काबिल' की सफलता की कहानी है.■

आइए जानते हैं ऋतिक के करियर की सफल फिल्में कौन सी हैं

क्र.सं.	वर्ष	फिल्म	प्रदर्शन
1.	2000	कहो ना प्यार है	ब्लॉकबस्टर
2.	2001	कभी खुशी कभी गम	ब्लॉकबस्टर
3.	2003	कोई मिल गया	सुपरहिट
4.	2006	धूम-2	ब्लॉकबस्टर
5.	2006	कृष	ब्लॉकबस्टर
6.	2008	जोधा अकबर	हिट
7.	2011	जिंदगी ना मिलेगी दोबारा	हिट
8.	2012	अग्निपथ	सुपरहिट
9.	2013	कृष-3	ब्लॉकबस्टर
10.	2014	बैंग-बैंग	हिट
11.	2016	काबिल	सुपरहिट

दिशा पटानी को पसंद नहीं है गॉसिप करना

मैं फिल्मी पार्टियों में नहीं जाती, मैं असामाजिक हूं. मैं शराब भी नहीं पीती क्योंकि मैं बाहर नहीं जाती. मुझे नहीं पता कि क्या हो रहा है, गॉसिप के लिहाज से.

धोनी: द अनटोल्ड स्टोरी से बॉलीवुड में एंट्री करने वाली अभिनेत्री दिशा पटानी का कहना है कि वह बॉलीवुड की पार्टियों में जाना पसंद नहीं करती और फिल्म जगत की गॉसिप में उनकी कोई ख़ास रुचि नहीं है. दिशा ने आगे कहा कि वह लोगों के बीच दिक्कत महसूस करती हैं और उन्हें अजीब लगता है. दिशा ने कहा, मैं फिल्मी पार्टियों में नहीं जाती, मैं असामाजिक हूं. मैं शराब भी नहीं पीती, क्योंकि मैं बाहर नहीं जाती. मुझे नहीं पता कि क्या हो रहा है, गॉसिप के लिहाज से. मुझे ऐसा सोचना भी बहुत अजीब लगता है. जब भी मैं काम करती हूं या कुछ नया सीखती हूं, तो मुझे अच्छा लगता है.■

हुमा कुरैशी ने बताया कैसा है अक्षय का मिज़ाज

हाल में अभिनेत्री हुमा कुरैशी और अक्षय कुमार की फिल्म जॉली एलएलबी-2 रिलीज हुई. फिल्म ने बॉक्स ऑफिस पर अच्छा प्रदर्शन किया और दर्शकों को भी यह फिल्म काफी पसंद आई.

हुमा ने अक्षय कुमार के साथ काम करने का अपना अनुभव साझा किया. उन्होंने आगे बताया कि वे अक्षय कुमार से अनुशासन और कठिन मेहनत आत्मसात करने का प्रयास कर रही हैं.

उन्होंने आगे बताया कि अक्षय काम करने के दौरान अपना सर्वोत्तम देने की कोशिश करते हैं. हुमा को लगता है कि एयरलिफ्ट में बेहतरीन अभिनय करने वाले अक्षय फिल्म के सेट पर काम करते समय ये भूल जाते हैं कि वे कोई स्टार हैं. हुमा ने कहा, लोग सोचते हैं कि सुपरस्टार अपनी सफलता को हल्के में ले लिया करते हैं, लेकिन अक्षय के साथ ऐसा नहीं है. मैंने उन्हें सही मायने में कड़ी मेहनत करते देखा है और मुझे पक्का विश्वास है कि वे हर उस फिल्म के लिए ऐसा करते हैं, जिसका वे हिस्सा होते हैं.

जॉली एलएलबी 2, वर्ष 2013 में आई फिल्म जॉली एलएलबी का सिक्वल है. पिछली फिल्म में अरशद वारसी और बोमन ईरानी मुख्य किरदारों में नज़र आए थे. लेकिन इस फिल्म में अरशद की जगह अक्षय अहम भूमिका में दिखाई दे रहे हैं. फिल्म में खिलाड़ी कुमार के अलावा अन्नू कपूर, हुमा कुरैशी और सौरभ शुक्ला भी महत्पूर्ण भूमिका में नज़र आ रहे हैं.■

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

शाहरुख़ खान की स्टार वैल्यू अब पहले जैसी नहीं रही!

ये छह सितारे दो समूहों में बंटे हुए हैं. पहले समूह में तीनों खान हैं, जिनकी फिल्मों के कलेक्शन 200 करोड़ के ऊपर रहते हैं. दूसरे में अक्षय कुमार, ऋतिक रोशन और अजय देवगन हैं जिनकी फिल्में 150 करोड़ के आसपास तक जाती हैं.

बॉलीवुड में वर्तमान में आमिर खान, सलमान खान, शाहरुख खान, अजय देवगन, अक्षय कुमार और ऋतिक रोशन ऐसे छह सितारे हैं, जिनके नाम से ही बॉक्स ऑफिस मालामाल हो जाता है. दर्शक सिनेमा हॉल में इनकी फिल्में देखने के लिए बेसब्री से इंतजार करते हैं और आरंभिक दिनों में भारी भीड़ जुटती है. इन सितारों के प्रशंसकों में इस बात की होड़ लगी रहती है कि कौन पहले फिल्म देखता है.

इन प्रशंसकों को फिल्म की रिपोर्ट से कोई मतलब नहीं रहता. ये उन दर्शकों में शामिल नहीं रहते, जो फिल्म की रिपोर्ट देखने के बाद निर्णय लेते हैं. फिल्म की स्टार वैल्यू इसी बात पर निर्भर करती है कि वह शुरुआती तीन दिनों में किस हद तक भीड़ खींच लेती है. इसके बाद फिल्म के चलने या नहीं चलने की बात फिल्म की गुणवत्ता पर निर्भर करती है.

ये छह सितारे दो समूहों में बंटे हुए हैं. पहले समूह में तीनों खान हैं, जिनकी फिल्मों के कलेक्शन 200 करोड़ के ऊपर रहते हैं. दूसरे समूह में अक्षय कुमार, ऋतिक रोशन और अजय देवगन हैं, जिनकी फिल्में 150 करोड़ के आसपास तक जाती हैं. शाहरुख खान की चेन्नई एक्सप्रेस और हैप्पी न्यू ईयर ने बॉक्स ऑफिस पर 200 करोड़ से ज्यादा कमाई की थी. उस समय शाहरुख बॉक्स ऑफिस पर पूरी तरह से छाए हुए थे. यहां तक की उन्होंने आमिर और सलमान को भी उस समय में कमाई के मामले में

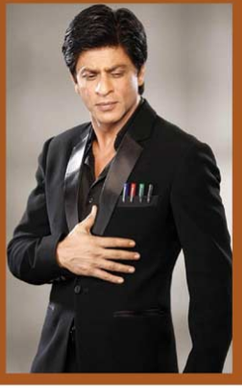

पीछे छोड़ दिया था. लेकिन अब शाहरुख खान की फिल्में जैसा प्रदर्शन कर रही हैं, उसे देखकर तो यही कहा जा सकता है कि उनकी स्टार वैल्यू अब कम हो गई है और उनकी फिल्में आमिर-सलमान की फिल्मों के बराबर व्यवसाय नहीं कर पाती हैं. शाहरुख की फिल्मों का व्यवसाय अब अजय, ऋतिक या अक्षय कुमार की फिल्मों जितना ही रह गया है.

इन दिनों आमिर और सलमान की लोकप्रियता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी हर फिल्म 250 करोड़ रुपये के ऊपर का कलेक्शन आसानी से कर लेती है. सलमान की पिछली फिल्मों बजरंगी भाईजान, सुल्तान (300) से ऊपर तो आमिर की पीके (340) और दंगल (385) करोड़ के ऊपर पहुंच गई थी. दूसरी ओर शाहरुख खान की फिल्म रईस 150 करोड़ रुपये के आसपास पहुंचने के लिए संघर्ष कर रही है.

बॉलीवुड में माना जा रहा है कि अब शाहरुख का स्टारडम अन्य दोनों खानों के मुकाबले कम हो गया है और वे पहले समूह से बाहर होकर दूसरे समूह में आ गए हैं. बकौनन पिछले एक-डेढ़ साल से शाहरुख का बॉक्स ऑफिस पर रिकॉर्ड बनाना धीरे-धीरे कम होता जा रहा है. शाहरुख खान की फिल्में अब 200 करोड़ तक भी नहीं पहुंच पाती हैं. यही स्थिति अजय, अक्षय और ऋतिक की भी है. अजय देवगन और अक्षय कुमार की कोई फिल्म अब तक 200 करोड़ के पार नहीं पहुंच पाई है, जबकि ऋतिक रोशन एक ही बार दो सौ पार पहुंचे हैं.■